# प्रसाद के नाटकों में नियतिवाद

पद्माकर शर्मा

रचना प्रकाशन
इलाहाबाद—१

प्रकाशक—
आत्म मनीषा
रचना प्रकाशन
५ खुसरोबाग रोड
इलाहाबाद—१

•

प्रथम संस्करण १९६८
© पद्माकर शर्मा

•

मुद्रक—
धर्म प्रकाश प्रेस
४३ मालवीय नगर
इलाहाबाद—२

मूल्य आठ रुपए

# भूमिका

अनेक विद्वानों ने नियति को मात्र भाग्यपरक मानकर प्रसाद के नियतिवाद का विवेचन किया है। किन्तु श्री पद्माकर शर्मा ने प्रस्तुत शोध निबन्ध में उक्त मान्यता का खण्डन करते हुए निष्कर्ष रूप में नियतिविषयक निम्नलिखित आठ भावाकृतियों (Facets) के आलोक में प्रसाद के नाटक साहित्य में नियतिवाद का युक्ति-संगत तथा प्रमाणपुरस्सर विश्लेषण किया है—

(१) ऋतवाद
(२) कर्मवाद
(३) नियतिवाद (Determinism)
(४) नियति और विश्वकल्याणवाद
(५) नियति और नियामक
(६) दैववाद
(७) पूर्वनिर्दिष्टवाद तथा
(८) सोद्देश्यवाद

श्री शर्मा की दृष्टि में प्रसाद की नियति-सम्बन्धी धारणा कोई स्थितिशील प्रत्यय (concept) नहीं है। प्रसाद के व्यक्तित्व के विकास के साथ साथ उनकी एतद्विषयक धारणा भी विकसित होती रही है। इस विकास के मूल में उनके व्यापक अध्ययन तथा यथार्थिक अनुभव की झलक प्रतीत होती है। सम्भव है वे स्वभाव से भाग्यवादी रहे हों किन्तु विविध शास्त्रों के अनुशीलन द्वारा उन्हें नियति के अनेक रूपों के दर्शन हुए हों। श्री पद्माकर की सभी स्थापनाओं से सहमत होना भले ही सम्भव न भी हो, फिर भी उनके स्वतन्त्र चिंतन का अपना मूल्य है जिसका मैं स्वागत करता हूँ।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

—नगेन्द्र

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ।

—शिशुपालवध द्वितीय सर्ग श्लोक ८६ ।

# उपक्रम

प्रस्तुत शोध निबन्ध मेरे एम० ए० (उत्तरार्ध) के आठवें प्रश्न पत्र के स्थान पर लिखा गया है। बी० ए० में आंग्ल साहित्य के विद्यार्थी रूप में मेरा ध्यान हार्डी की नियति भावना की ओर सर्वाधिक आकृष्ट हुआ। वस्तुतः वही रुझान परमादरणीय डा० सहल साहब की सतत प्रेरणा पाकर इस रूप में पल्लवित-पुष्पित हुआ है।

विषय को व्यापक रूप से हृदयंगम करने के लिए मुझे कई विद्वानों से भी चर्चा-परिचर्चा करनी पड़ी जिनमें सर्वश्री बच्चन जी, लक्ष्मी नारायण 'सुधांशु' तथा हंसकुमार तिवारी के नाम उल्लेखनीय हैं। सभी ने इस विषय की सराहना की और मेरा मार्ग प्रशस्त किया।

प्रथम अध्याय में मैंने व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति दोनों सन्दर्भों में 'नियति' शब्द की संक्षेप में व्याख्या की है। तत्पश्चात् 'नियति' के पर्यायवाची शब्दों पर विचार करते हुए उनका वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण के आधार पर मैंने नियति शब्द के तीन अर्थ—क्रमशः नियमपद्धति, चेतनसत्ता और भाग्य—लिए हैं। इसी अध्याय में नियतिवाद के सम्बन्ध में कतिपय पाश्चात्य मतों का भी उल्लेख कर दिया है।

द्वितीय अध्याय में भारतीय वांगमय के आधार पर नियतिवाद के उद्भव और विकास का विहंगावलोकन (ऋग्वेद से योगवासिष्ठ तक) प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय में कालक्रमानुसार प्रसाद के समस्त प्रकाशित नाटकों में नियति के स्वरूप का विवेचन विश्लेषण किया है। इसे मैंने तीन बिन्दुओं—नियति विषयक सन्दर्भ, समीक्षण और निष्कर्ष—के आधार पर यथासाध्य स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय में मैंने प्रसाद के नियतिवाद पर समग्र रूप से विचार किया है और यह दिखाने का प्रयास किया है कि उनकी नियति विषयक परिकल्पना में विकास भी है। इस विकास को मैंने नियति की आठ 'भूमिकाओं' से दर्शाया है।

इस शोध निबन्ध में मेरी कुछ मौलिक उपलब्धियाँ भी हैं। नियति के पर्यायों का सम्यक् विवेचन सम्भवतः सर्वप्रथम मैं ही प्रस्तुत कर रहा हूँ। नियतिवाद को अधिकांश विद्वानों ने भाग्यवाद कहकर ही सन्तोष कर लिया है। कुछ कोशकारों ने भी इस भ्रम को दोहराया है। यहाँ तक लिख दिया गया है कि भाग्यवाद मात्र एक व्यावहारिक प्रवृत्ति है दार्शनिक सिद्धान्त नहीं (देखिए पृ० ४०)। इस सम्बन्ध में डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' का शोध प्रबन्ध 'हिन्दी-काव्य में नियतिवाद' भी उल्लेखनीय ग्रन्थ है किन्तु इसके लेखक ने भी 'नियति' को भाग्य का पर्याय ही माना है। वस्तुतः नियति का एक अर्थ 'भाग्य' भी हो सकता है किन्तु भाग्य ही नहीं। मैंने 'नियति' के पर्यायों के वर्गीकरण के आधार पर इस शब्द के तीन अर्थ लिए हैं (देखिये पृ० १५-१६)। नियति का यह त्रिविध स्पष्टीकरण इससे पूर्व किसी समी

दाव द्वारा नहीं किया गया था। प्रसादजी की नियति भावना को मैंने कहीं कहीं ग्रीकवासियों की भाग्य सम्बन्धी मान्यता का आभास देते हुए भी मूलतः वस्तुतः ऋतान्वित कमवाद सिद्ध किया है और उसके आगामी विकास को भी आठ मुखाकृतियों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है—जोकि मेरी अपनी उपलब्धि है प्रसाद की नियति मूलतः ऋतवादी है—मेरी इस मान्यता का समर्थन श्रीमती महादेवी वर्मा ने भी किया है ( देखिए पृ० १३३ ) और वह कर्मवादी है—यह तो प्रसाद जी के निबन्धों से भी स्पष्ट हो जाता है।

अपने इस शोधकार्य के अन्तर्गत मुझे भी नियति नटी के कई प्रकोप भुगतने पड़े। अभी कार्य प्रारम्भ ही किया था पूज्य जीजाजी श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर का स्वर्गवास हो गया और मुझे लम्बी यात्रा पर बिहार जाना पड़ा तत्पश्चात् होस्टल के कमरे में अग्निदेव का प्रकोप हुआ और अधिकांश लिखित सामग्री स्वाहा हो गई। किन्तु मैं भी प्रसाद के नियतिवादी पात्रों की तरह कर्म क्षेत्र में प्राण पण से जुटा ही रहा।

अपने इस अध्ययन से मुझे यह प्रतीति हुई है कि नियतिवाद एक अत्यन्त गहन और विस्तृत विषय है। फिर प्रसाद की नियति तो और भी अधिक गूढ़ और दुरूह है। अतः मैं तो अपनी शक्ति-सीमाओं में इस विषय का स्पर्श मात्र ही कर पाया हूँ। किन्तु मेरा यह अकिंचन प्रयास भी यदि किसी को थोड़ी सी भी दिशा दृष्टि दे सके तो मैं स्वयं को उपकृत समझूँगा।

अन्त में उन समस्त महानुभावों का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनका स्नेह-सहयोग मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मिला है। परमपूज्य डॉ० नगेन्द्र जी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने भूमिका लिखकर मुझे कृतार्थ किया। इस शोध निबन्ध के निर्देशक परमगुरुदेव डा० कन्हैयालाल जी सहल के प्रति तो आभार प्रकट करते हुए भी मुझे संकोच हो रहा है क्योंकि उनका गरिमामय व्यक्तित्व तो इस निबन्ध की पंक्ति-पंक्ति में स्वयं ही उपस्थित है। वास्तव में यह उन्हीं की महती प्रेरणा और शुभाशीषों का फल है, मैं तो मात्र एक माध्यम हूँ।

# विषय-सूची

# नियतिवाद : सैद्धांतिक विश्लेषण

"नियति' शब्द का अर्थ —

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'नियम्यते आत्मा अनयति नियति'[1] अर्थात् आत्मा की नियामिका शक्ति नियति है। काव्य प्रकाश' के रचयिता मम्मटाचार्य ने भी वाणी की वन्दना करते हुए नियति' शब्द को इसी अर्थ में व्यवहृत किया है[2] जिससे स्पष्ट है कि नियति' नियमों की समष्टि के रूप में उन्हें भी स्वीकार्य है।

प्रवृत्ति निमित्त अर्थ को लक्ष्य में रखते हुए ज्ञात होता है कि नियति' का प्रयोग भाग्य दैव अदृष्ट भागधेय विधि भवितव्यता दिष्टिकता प्रारब्ध कर्म और ईश्वरेच्छा के पर्याय के रूप में भी होता रहा है।[3] अमरकोशकार ने 'नियति का प्रयोग इसी रूप में किया है।[4] संस्कृत के महाकवि माघ ने भी आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगात्[5] के द्वारा नियति' शब्द का प्रयोग भाग्य या दैव के अर्थ में ही किया है। वाञ्छनीय समझकर नियति के पर्यायों की पृथक पृथक व्याख्या नीचे दी जाती है।

"नियति' के पर्याय —

भाग्य — व्यक्ति के हिस्से (भाग) में जो कुछ करना और भोगना होता है उसे भाग्य कहते हैं।[6] अतः भाग्य वह शक्ति है जो प्राणी मात्र

(१) शब्दकल्पद्रुम खण्ड २ पृ० ८८६

(२) नियतिकृतनियमरहिताम

—काव्यप्रकाश उल्लास १, श्लोक १

(३) भाग्य के ही अपर पर्याय दैव विधि नियति ईश्वरेच्छा भवितव्यता और प्रारब्ध हैं।

हिन्दी साहित्यकोश (धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ५४०

(४) दैव दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधि

हेतुर्नाकारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम्

—अमरकोश कानवर्ग काण्ड १ श्लोक २८

(५) माघ शिशुपालवध, ४–३४

(६) हिन्दी साहित्यकोश (धीरेन्द्र वर्मा) पृ० ५४०

य कर्म को स्वतन्त्र रूप से प्रभावित करती है और उसे जिधर चाहे मोड देती है। यह वह अज्ञेय शक्ति है जो मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का संचालन करती है जो व्यक्ति या समाज को प्रभावित करती है जो पूर्व निर्धारित होती है जिस पर किसी का वश नहीं चलता जो अपरिवर्तनीय है और जिसका किसी को पूर्वज्ञान नहीं होता। इसलिए भाग्य को सर्वथा परोक्ष तत्त्व से माना जाता है और मनुष्य उसके विषय में कुछ भी कहने में सर्वदा असमर्थ होता है।

उक्त विवेचन के अनुसार भाग्य का शाब्दिक अर्थ भाग हिस्सा या खण्ड मान लेने पर भाग्य शब्द पर एक और दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। विश्व की समस्त वस्तुएं हमें दो स्वरूप में दृष्टिगोचर होती हैं एक निराकार और दूसरा साकार—इतर शब्दों में समष्टि रूप वस्तुएं और व्यष्टिरूप वस्तुएं। समष्टि अमूर्त स्वरूप है और व्यष्टि मूर्त्त रूप। अतः अमूर्त से प्राकृतिक रूप समष्टि का एक भाग या अंश ही हमें प्राप्त होता है। भाग्य का चिन्तन ... भाग का ... स्थान है उसी को कुछ लोगों ने भाग्य माना है।

ईसाई धर्म के अनुसार भाग्य ईश्वरेच्छा का ही दूसरा नाम है। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वह सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है। वही समस्त शक्तियों का संचालन और नियन्त्रण करता है। इसलिए मनुष्य की सभी बातों और घटनाओं का सूत्र भी ईश्वर के हाथों में है।

इस्लाम धर्म में भी भाग्य का ऐसा ही रूप मिलता है। उनके अनुसार अल्लाह सर्वोपरि सत्ता है जिसे विस्मय समस्त सृष्टि का कर्ता है और जिसका ब्रह्माण्ड के समस्त भौतिक नियमों पर स्थायी और अनन्त है। इससे स्पष्ट है कि भाग्य वह अज्ञेय शक्ति है जिसके कारण पूर्व निर्दिष्ट समस्त घटनाएं घटित होती हैं।[1]

---

(1) कन्हैया शरण अग्रवाल प्राचीन भाग्यवाद दर्शन साप्ताहिक भारत। (१०-५-१९६ ) पृ

भाग्य की महिमा से महाभारत भरा पड़ा है। भाग्य के सम्मुख ययाति और धृतराष्ट्र दोनों ही निष्चेष्ट हो जाते हैं। भीष्मपितामह का पुरुषार्थ भी भाग्य के आगे शिथिल सा दीख पड़ता है। धर्मराज तो सर्वथा भाग्यवादी बने हुए हैं। उनका विश्वास है कि भाग्य ही अन्तिम और चरम सत्ता है। भाग्यहीन पुरुष बलवान होने पर भी धन प्राप्त नहीं कर सकता और जो भाग्यवान है वह बालक और दुर्बल होने पर भी पर्याप्त धन प्राप्त कर लेता है।[१] धृतराष्ट्र भी किसी बात के होने या न होने में मनुष्य का नहीं भाग्य का ही हाथ मानते हैं। विधाता सूत्र में बंधी कठपुतली की भाँति सबको नचा रहे हैं।[२]

सारांश में भाग्यवाद वह वैचारिक प्रवृत्ति है जिसके प्रभाव से मानव जीवन में स्वतन्त्रता को अवास्तविक समझा जाता है। इसमें यत्र तत्र धार्मिक विश्वास का भी पुट है जिसके कारण कभी कभी भाग्य को ही ईश्वरेच्छा मान लिया जाता है। सभी युगों में भाग्यवादी मान्यता ने चिंतन पर पर्याप्त प्रभाव डाला है।

दैव — 'दैव' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है देवता सम्बन्धी।[३] कोशकार के अनुसार दैव का तात्पर्य है देवता सम्बन्धी देवता का किया हुआ, प्रारब्ध भाग्य आदि।[४] योगवासिष्ठकार ने भी भाग्य के रूप में दैव नाम से चिंतन दैव न विद्यते आदि कह कर यत्र तत्र इस शब्द का प्रयोग किया है।[५] कुछ स्थानों पर पूर्व जन्म में किये गये शुभाशुभ कर्मों के अर्थ में भी दैव का प्रयोग मिलता है।[६] किन्तु प्रमुखतः यह शब्द भाग्य के पर्याय रूप में ही सर्वाधिक प्रचलित है।

---

(१) भाग्यक्षये प्राप्नोति धनं सुबलवानपि
भागधर्मा बतस्त्वर्वाकृत्नो बालश्च विन्दति।
—महाभारत अनु० प०, अ० १६३ पृ०३२३

(२) अनीश्वरो य पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा
धात्रातु दिष्टस्य वशे किलाय तस्माद् वदत्व श्रवण धृतो हम।
—वही उद्यो० प० ,९—१

(३) देवस्यद दव अण (तस्यदम प्र० ४—,—१२०)

(४) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० ६२०

(५) B L Atreya : The Philosophy of the Yogavashistha P 130

(६) पूर्व जन्म कृत कर्म तद् दैवमिति कथ्यते।

दैव अथवा भाग्य की महिमा सर्वत्र गाई गई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि जन्म, कर्म, शुभाशुभ सभी दैव के अधीन हैं। यही नहीं सारा संसार एकमात्र दैवाधीन है। इस कारण दैव से अधिक और कोई बल नहीं है।

मत्स्य पुराण में दैव का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। मनु के यह पूछने पर कि दैव और पुरुषार्थ में कौन श्रेष्ठतर है, मत्स्य ने कहा कि दैव ही पुरुषकार से श्रेष्ठ है।[2]

अदृष्ट —सामान्यतः अदृष्ट शब्द प्रारब्ध, भाग्य अथवा किस्मत के अर्थ में प्रयुक्त होता है, किन्तु वैशेषिकों ने उक्त शब्द की निम्नलिखित व्याख्या की है —

प्राचीन वैशेषिक लोग प्राणियों के धर्म रूप अदृष्ट को परमाणुओं के प्रथम स्पन्द का कारण बताते हैं। अदृष्ट के सम्बन्ध में उनकी दार्शनिक कल्पना बड़ी विलक्षण है। अयस्कान्त मणि की ओर सूई की स्वाभाविक गति,[3] वृक्षों के भीतर रस का नीचे से ऊपर चढ़ना,[4] अग्नि की लपटों का ऊपर उठना, वायु की तिरछी गति अदृष्ट-जन्य बताई जाती है पर पीछे के आचार्यों ने अदृष्ट की सहकारिता से ईश्वरेच्छा से ही परमाणुओं में स्पन्द तथा तज्जन्य सृष्टि क्रिया मानी है।[5]

वैशेषिकों द्वारा किया गया अदृष्ट का उक्त विवेचन डिटरमिनिज्म अर्थात् नियतवाद से मिलता जुलता है।

कर्म —कर्म शब्द का शाब्दिक अर्थ है, वह जो किया जाए, कार्य, काम, कृत्य [illegible] भाग्य प्रारब्ध [illegible][6] किन्तु साधारण बोलचाल की भाषा में कर्म क्रिया के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

दर्शन में कर्म शब्द का एक विशिष्ट अर्थ है। मनुष्य के कार्य से काल [illegible] फल अवश्य उत्पन्न होता है। यह फल शुभ अशुभ या

(१) हिन्दी विश्व कोश (नगेन्द्र वसु) भाग १० पृ० ६६२
( ) वही पृ ६६२
( ) मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमित्यदृष्टकारणम्। (वै॰ सूत्र ५-१-१५)
(४) वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् (वही ५-२-७)
( ) बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृ
( ) [illegible] पृ २१०

इन दोनो से भिन्न भी हो सकता है। दान शुभ कर्म है किन्तु हिंसा अशुभ। यहाँ कर्म का प्रयोग क्रिया और फल दोनो के लिए हुआ है। अत क्रिया से फल अवश्य उत्पन्न होता है किन्तु शरीर की स्वभाविक क्रियाएं–आँख की पलकों का उठना–गिरना सास लेना आदि–कर्म की कोटि मे नही आ सकती। क्रिया म जब भावना मिल जाती है तभी कर्म होता है।[१]

कर्म म विश्वास रखने वाला का मत है कि ससार म कोई राजसी ठाठ-बाट से रहता है और कोई दर दर भटकता है इस वैषम्य का कारण कर्म ही है, भाग्य नही। किसी की वर्तमान दशा उसके पूर्वकृत कर्मों के शुभाशुभ फल के कारण ही उदित होती है। कर्म विषयक इसी भावना ने भारतीय दर्शन म कर्मवाद को जन्म दिया। कर्मवाद की उत्पत्ति के विषय म ये पक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं —

कर्मवाद की प्रथम अनुभूति वैदिक यज्ञ के विधान म होती है। वैदिक विश्वास के अनुसार यदि यज्ञ का विधिवत् सपादन किया जाए तो उससे एक अदृश्य शक्ति उत्पन्न होती है। इसे 'अदृष्ट' अथवा अपूर्व कहते हैं। यही उचित अवसर आने पर यज्ञ के वांछित फल को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यज्ञ का फल मनुष्य को अवश्य प्राप्त होता है। इस कर्म और फल के सम्बन्ध की सार्वभौम नियम के रूप म अभिव्यक्ति सर्वप्रथम ऋग्वेद के 'ऋत के सिद्धान्त म मिलती है।[२] अत कर्मवाद का मूल स्रोत ऋग्वैदिक ऋतवाद ही है।

कर्मवाद और पुनर्जन्म का भी अटूट सम्बन्ध है। कर्मवादी मानते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि कर्म भोग भी वही शरीर करे जिसने कर्म किया है। कर्म भोग के लिए कर्ता दूसरा शरीर भी धारण करता है। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। मृत्यु शरीर की आनुषगिक स्वाभाविक क्रिया है। जिसका कर्म पर कोई प्रभाव नहीं होता। अत कर्मवाद को पुनर्जन्म से पृथक नहीं किया जा सकता।[३]

---

(१) हिन्दी विश्व कोश (ना० प्र० स०) भाग २, पृ० ३६८

(२) वही पृ० ३६६

(३) वही, पृ० ३६६

'दव अथवा भाग्य की महिमा सवत्र गाई गई है। ब्रह्मवैवर्त पुराण म लिखा है कि जम कम अशुभ सभी दव के अधीन हैं। यही नहीं सारा ससार एकमात्र दवाधीन है। इस कारण दव से अधिक और कोई बल नहीं है।[1]

मत्स्य पुराण म दव का वणन विस्तार पूवक किया गया है। मनु के यह पूछने पर कि दव और पुरुषाथ म कौन श्रेष्ठतर है मत्स्य ने कहा कि दव ही पुरुषकार से श्रेष्ठ है।[2]

अदृष्ट—सामान्यत अदृष्ट शब्द प्रारब्ध भाग्य अथवा किस्मत के अथ म प्रयुक्त होता है, किन्तु वशेषिकों ने उक्त शब्द की निम्नलिखित व्याख्या की है —

प्राचीन वशेषिक लोग प्राणियों के धम रूप अदृष्ट को परमाणुओं के प्रथम स्पंद का कारण बताते हैं। अदृष्ट के सम्बन्ध म उनकी दार्शनिक कल्पना बड़ी विलक्षण है। अयस्कान्त मणि की ओर सुई की स्वाभाविक गति[3] वृक्षों के भीतर रस का नीचे से ऊपर चढ़ना[4] अग्नि की लपटों का ऊपर उठना वायु की तिरछी गति अदृष्ट जन्य बताई जाती है पर पीछे के आचार्यों ने अदृष्ट की सहकारिता से ईश्वरेच्छा से ही परमाणुओं म स्पन्द तथा तज्जन्य सृष्टि क्रिया मानी है।[5]

वशेषिकों द्वारा किया गया 'अदृष्ट' का उक्त विवेचन डिटरमिनिज्म अर्थात् नियतिवाद से मिलता-जुलता है।

कम —कम शब्द का कोशगत अथ है, वह जो किया जाए काय काम कृत्य भाग्य प्रारब्ध किन्तु साधारण बोलचाल की भाषा म कम क्रिया के अथ म भी प्रयुक्त होता है।

दशन म कम शब्द का एक विशिष्ट अथ है। मनुष्य के काय से कोई न कोई फल अवश्य उत्पन्न होता है। यह फल शुभ अशुभ या

(१) हिन्दी विश्व कोश (नगेन्द्र वसु) भाग १० पृ ६६२
(२) वही पृ ६६२
(३) मणिगमन सूच्यभिसपणमित्यदृष्ट कारणम्। (व० सूत्र ५-१-१५)
(४) वृक्षाभिसपणमित्यदृष्टकारितम् (वही ५-२-७)
(५) बलदेव उपाध्याय भारतीय दशन पृ ३
( ) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ २१०

इन दोनो से भिन्न भी हो सकता है। दान शुभ कर्म है किन्तु हिंसा अशुभ। यहाँ कर्म का प्रयोग क्रिया और फल दोनो के लिए हुआ है। अत क्रिया से फल अवश्य उत्पन्न होता है किन्तु शरीर की स्वाभाविक क्रियाएँ–आँख की पलकों का उठना–गिरना, सांस लेना आदि–कर्म की कोटि मे नही आ सकती। क्रिया मे जब भावना मिल जाती है तभी कर्म होता है।[१]

कर्म मे विश्वास रखने वालों का मत है कि संसार मे कोई राजसी ठाठ–बाट से रहता है और कोई दर दर भटकता है, इस वैषम्य का कारण कर्म ही है, भाग्य नही। किसी की वर्तमान दशा उसके पूर्वकृत कर्मों के शुभाशुभ फल के कारण ही उदित होती है। 'कर्म विपाक' इसी भावना ने भारतीय दर्शन मे 'कर्मवाद' को जन्म दिया। कर्मवाद की उत्पत्ति के विषय मे ये पंक्तियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं —

कर्मवाद की प्रथम अनुभूति वैदिक यज्ञ के विधान मे होती है। वैदिक विश्वास के अनुसार यदि यज्ञ का विधिवत् संपादन किया जाए तो उससे एक अदृश्य शक्ति उत्पन्न होती है। इसे 'अदृष्ट' अथवा 'अपूर्व' कहते हैं। यही उचित अवसर आने पर यज्ञ के वांछित फल को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यज्ञ का फल मनुष्य को अवश्य प्राप्त होता है। इस कर्म और फल के सम्बन्ध की सार्वभौम नियम के रूप मे अभिव्यक्ति सर्वप्रथम ऋग्वेद के 'ऋत' के सिद्धान्त मे मिलती है।[२] अत कर्मवाद का मूल स्रोत ऋग्वैदिक ऋतवाद ही है।

कर्मवाद और पुनर्जन्म का भी अटूट सम्बन्ध है। कर्मवादी मानते हैं कि यह आवश्यक नही कि कर्म भोग भी वही शरीर करे जिसने कर्म किया है। कर्म भोग के लिए कर्ता दूसरा शरीर भी धारण करता है। यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। मृत्यु शरीर की आनुषंगिक स्वाभाविक क्रिया है। जिसका कर्म पर कोई प्रभाव नही होता। अत कर्मवाद को पुनर्जन्म से पृथक नही किया जा सकता।[३]

---

(१) हिन्दी विश्व कोश (ना० प्र० स०) भाग २ पृ० ३६८

(२) वही पृ० ३६६

(३) वही, पृ० ३६६

तत्त्व चिन्तको ने सचित क्रियमाण (वतमान) और प्रार ध क भेद से कम की तीन गतियाँ बताई हैं। अनेक ज मो म सचित किये हुए पुराने कर्मों को सचित कम कहते हैं। बहुत समय से सचित किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कम वर्तमान ज म मे पुण्य एव पाप क रूप म सामने आता है। प्रत्येक ज म मे प्राणियो द्वारा कम सचय होता रहता है। जो क्रियमाण कम है। उसी को वतमान कम कहते हैं। देहधारी जीव शुभ अथवा अशुभ रूप मे कम मे प्रवृत हो जाते हैं। शरीर धारण कर लेने पर काम की प्रेरणा से कर्म कम चालू हो जाते हैं। प्रार ध कम उसे समझना चाहिए जो सचित मे से प्रारम्भ हो गया है। ज्ञानी को भी प्रार ध कम अवश्य भोगना पड़ता है इसमें कोई स देह नहीं। यह निश्चित है कि पूव ज म म किये गये जितने अच्छे और बुरे कम हैं उनक फल वतमान ज म मे सामने आते हैं। उ हें भोगना प्राणियों के लिए अनिवार्य हो जाता है। मनुष्य देवता यक्ष गधर्व और किन्नर सभी कर्म भोग म परतन्त्र हैं। देहधारण करने मे भी कम ही मुख्य कारण है। मनुष्य क वतमान सुख-दु ख पूव ज म क कम क ही परिणाम है। इससे सिद्ध है कि अनेक ज मो म सचित जितने कम हैं उनमे से क्रमश एक एक कम का भोग प्राणियो क सामन समयानुसार आता रहता है। देवगण भी इनसे नहीं बच सकते।[१]

कम के दृढ समथक बुद्धिवादी मीमासक हुए हैं जिनका कहना है कि मानव जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार [illegible]। उ होने यह प्रतिपादित किया है कि कम ही वह शक्ति है जिस [illegible] माण होता है। [illegible] कम किया जाता है। भाग्य की [illegible] ही होती है ही का दूसरा नाम पुरु[illegible] ार भाग्य [illegible] है।

महाभारत में भी कर्म का महत्त्व अनेक स्थलों पर उद्घाटित किया गया है कर्म से प्राणी बाँधा जाता है और विद्या से उसका छुटकारा हो जाता है।[1] कर्म की पकड़ इतनी गहरी है कि उससे जन्म जन्मान्तर में भी छुटकारा नहीं मिलता पूर्व की सृष्टि में प्रत्येक प्राणी ने जो जो कर्म किये होंगे ठीक वे ही कर्म उसे ( चाहे उसकी इच्छा हो या न हो ) फिर फिर यथा पूर्वक प्राप्त होते रहते हैं।[2] शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं, हे राजन्, यदि यह देख पड़े कि किसी व्यक्ति को उसके पाप-कर्मों का फल नहीं मिला, तो समझना चाहिए कि वह फल उसके पुत्रों पौत्रों और प्रपौत्रों को भोगना पड़ेगा।[3]

वास्तव में कर्मवाद भारतीय दर्शनों में अधिकांश दर्शनों का प्रमुख स्वर रहा है। वैदिक साहित्य में भी कर्मवाद की ही महत्ता गायी गई है, भाग्यवाद अथवा नियतिवाद वहाँ ढूढने पर भी नहीं मिलेगा। हमारे सूत्रकार नियति न मानते थे। उनका यहाँ तक विश्वास था कि जो लोग नियति मानते हैं वे बुद्धिमान नहीं क्योंकि ऐसा विश्वास रख कर कोई भी साँप के मुह में नहीं घुसता कि कपाल में जो लिखा है वह अवश्य होगा।[4]

उपरोक्त वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में जहाँ एक ओर भाग्यवादी भावना का प्रचार प्रसार था वहीं दूसरी ओर कर्मवाद भी यथेष्ट रूप से प्रचलित था। यह कर्मवाद भाग्यवाद से कोसों दूर था। पश्चिम में जिस कार्य कारण-परम्परा हीन भाग्यवाद का विकास हुआ भारतीय कर्मवाद में उसकी झलक मिलनी भी मुश्किल है। कर्मवाद एवं सर्वथा वैज्ञानिक सिद्धान्त रहा है जो कार्य और कारण की परम्परा को लेकर चला इसके अधिष्ठाता देव वरुण का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। अतः भारतवासी मूलतः कर्म के पुजारी थे और इनके इस कर्मवाद को भाग्यवाद कदापि नहीं कहा जा सकता।

---

(१) कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते—महाभारत शान्ति प० २४० ७

(२) येषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः। वही २३१-४८

(३) पाप कर्म कृतं किंचिद्यदि तस्मिन्न दृश्यते नृपते तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि च नप्तृषु। वही १२९-२१

(४) हिन्दी विश्वकोष (नगेन्द्रनाथ वसु) भाग १, पृ० ३३४

विधि —साधारणत इस शब्द का प्रयोग किसी कार्य का सम्पादन करने के ढंग रीति या प्रणाली के अर्थ में होता है। शास्त्र में विधि शब्द धर्म या उस आज्ञा के रूप में प्रयुक्त होता है जिसका पालन नियमानुसार अवश्य किया जाना चाहिए।

किन्तु दर्शन में यह शब्द प्रकृति नियति भाग्य प्रारब्ध तकदीर अदृष्ट और कर्म के पर्याय के रूप में भी यत्र-तत्र प्रयुक्त होता है।[१] विधीयते सुखदु पे अनेनेति विधाति अर्थात् 'विधि वह है, जिसके द्वारा सुखदुःख का विधान होता है'।[२]

भागधेय — भागधेय से तात्पर्य है भाग्य किस्मत प्रारब्ध।[३] हिन्दी विश्व कोश में इसकी परिभाषा भागेन धीयते सौंपा कर्मार्जित् कर दी गई है।[४] स्पष्ट है कि इस शब्द का प्रयोग भी भाग्य के अर्थ में होता है।

प्रारब्ध —प्रारब्ध का शाब्दिक अर्थ है प्रारम्भ किया हुआ। अर्थात् जिस कर्म का फलभोग प्रारम्भ हो चुका है उसे प्रारब्ध कहते हैं।[५] किन्तु इस शब्द का प्रयोग अदृष्ट भाग्य और किस्मत के पर्याय रूप में भी किया जाता है।[६]

ललाट रेखा —साधारणत ललाट का अर्थ मस्तक अथवा माथे से लिया जाता है किन्तु यह लोक प्रचलित है कि छठी के दिन भाग्य देवी आकर माथे पर मनुष्य का भाग्य लिख जाती है और उसी के अनुसार ही उसे जीवन यापन करना पड़ता है। इस लिखावट में राई रत्ती भी परिवर्तन असम्भव है। ललाट के इसी लेख को ललाट रेखा कहते हैं। इसलिए इस शब्द का प्रयोग भाग्य या किस्मत का लिखा ललाट में लिखा होना भाग्य या किस्मत में लिखा होना के रूप में होता है।

---

(१) हिन्दी विश्व-कोश (नगेन्द्रनाथ वसु) भाग २१ पृ० ४०७

(२) वही पृ० ४०७

( ) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० १ १६

(४) हिन्दी विश्व-कोश (नगेन्द्रनाथ वसु) भाग १६ पृ १५

(५) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० ६१८

(६) हिन्दी विश्व कोश (नगेन्द्रनाथ वसु) भाग १४ पृ ७३८

(७) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० १२०४

भवितव्य —भवितव्य का अर्थ है अवश्य होने वाली बात होनहार भाग्य, अदृष्ट [१] इसका शाब्दिक अर्थ है होने योग्य किन्तु यह भाग्य के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यथा अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।

दष्टिकला —दष्टिक का अर्थ होता है भाग्य के भरोसे रहने वाला।[२] इसी से दष्टिकता[३] शब्द उद्भूत हुआ है। अतः इस शब्द का अर्थ भी भाग्य अथवा प्रारब्ध ही है।

दिष्ट —'दिष्ट' का अर्थ है नियत अथवा अवश्य होने वाला जैसा कि निर्दिष्ट आदि शब्द से स्पष्ट है। इस शब्द का प्रयोग भी नियति दष्टिकता आदि के अर्थों में किया जाता है।

भागधेय — भाग्यांश का तात्पर्य है भाग्य द्वारा अंश में मिला हुआ। यह शब्द भाग्य और भागधेय से मिलता-जुलता-सा है तथा दैव नियति प्रारब्ध विधि भवितव्यता किस्मत नसीब तकदीर आदि का पर्यायवाची भी है।

भावी — भावी का अर्थ है आनेवाला समय, भविष्य में अवश्य होने वाली बात आदि। यह शब्द भी भवितव्यता होनी तकदीर भाग्य आदि के अर्थों में प्रयुक्त होता है।

विधाता —विधान करने वाले उत्पन्न करने वाले अथवा जन्म देने वाले को विधाता कहते हैं। यह शब्द ब्रह्मा और ईश्वर आदि के लिए भी प्रयोग में आता है क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनके द्वारा ही सृष्टि निर्मित हुई है किन्तु साधारण बोलचाल की भाषा में भाग्य अथवा ईश्वरेच्छा के लिए भी विधाता का प्रयोग प्रचलित है।

अंक —इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है चिह्न या निशान किन्तु यह शब्द भाल पर लिखे विधि के लेख का सूचक भी है और भाग्य अथवा किस्मत के अर्थों में भी प्रयुक्त होता है।

---

(१) हिन्दी विश्व कोश (नगेन्द्रनाथ वसु) भाग १६ पृ० ६ ७

(२) नालन्दा विशाल शब्द सागर पृ० ६२१।

(३) भालम्बते दष्टिकता (भाग्य)

होनी —होनी अवश्य होने वाली बात या घटना को कहते हैं। भावी भवितव्यता होनहार आदि इसके पर्याय हैं।

होनहार —इस शब्द का अर्थ भी होनी की तरह उस बात से है जो अटल हो तथा होकर ही रहे। इसका प्रयोग होनी भावी भवितव्यता आदि के अर्थों में होता है।

हठ —वैसे इस शब्द का अर्थ जिद दृढ़ प्रतिज्ञा अथवा टेक से होता है किन्तु भाग्य की अटलता के लिए विधि का हठ भाग्य का हठ आदि कह कर अथवा हठ कहकर नियति की दुर्दमनीयता को दर्शाया जाता है जैसा कि हठात् आदि प्रयोगों से भी स्पष्ट है।

संयोग —दो या दो से अधिक बातों का एक साथ घटित होना संयोग कहलाता है। किन्तु भाग्य भावी अथवा ईश्वरेच्छा के लिए भी संयोग का प्रयोग बहुधा देखा जाता है।

काल —काल शब्द उस सम्बन्ध सत्ता को व्यक्त करता है जिसके द्वारा भूत भविष्य और वर्तमान आदि की प्रतीति होती है। इस शब्द का प्रयोग भी नियति भाग्य और अदृष्ट आदि के अर्थों में होता है।

कृतान्त —वाल्मीकि रामायण में भाग्य आदि के अर्थ में विधि काल नियति भवितव्यता दैव और कृतान्त आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। दैव के बाद सर्वाधिक प्रयोग कृतान्त शब्द का हुआ है। एक उदाहरण देखिए —

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे
रज्ज्वेव पुरुषं बध्वा कृतान्तः परिकर्षति[१]

अर्थात् अत्यधिक विस्तीर्ण ऐश्वर्य हो भयंकर से भयंकर आपदा हो फिर भी भाग्य रस्सी की तरह बांध कर पुरुष को खींचता है।

ऋत —ऋग्वेद में ऋत शब्द का व्यापकता से प्रयोग हुआ है। वैदिक ऋषियों ने ऋत को ही संसार के नियम चक्र का और ब्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त व्यवस्था का एक मात्र कारण माना है। ऋत वह अखण्ड नियम विधान है जो मूलतः नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। वस्तुतः साहित्य में वर्णित यह ऋतवादी भावना नियति की अटूट कार्य कारण-परंपरा वाली विचारधारा से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

---

(१) वाल्मीकि रामायण ४–७–३

तक्दीर (तक़दीर) —यह शब्द भी प्रचुरता से भाग्य प्रारब्ध अदृष्ट, दैव किस्मत और मुकद्दर आदि का पर्यायवाची बनकर प्रयुक्त होता है।

किस्मत — किस्मत का अर्थ है भाग्य, अदृष्ट प्रारब्ध तकदीर आदि। 'किस्मत आजमाना' 'किस्मत फूटना' 'किस्मत चमकना' आदि मुहावरों से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द 'भाग्य' का ही पर्याय है।

मुकद्दर —इस शब्द का प्रयोग भी प्रारब्ध भाग्य, अदृष्ट किस्मत, तकदीर नसीब भाग्य आदि के लिए किया जाता है।

सितारा —वसे 'सितारा' के अर्थ हैं तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि किन्तु भाग्य, प्रारब्ध, तकदीर, नसीब, किस्मत आदि के लिए भी शब्द का प्रयोग प्रचलित है जैसा कि 'सितारा चमकना', 'सितारा बुलन्द होना', आदि मुहावरों से स्पष्ट है, जो भाग्योदय होने अथवा अच्छी किस्मत होने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

वक्त —वक्त का शाब्दिक अर्थ है समय, अवसर मौका जमाना, ऋतु, मौसम आदि लेकिन लाक्षणिक रूप में इस शब्द का प्रयोग भी हिन्दी शब्द काल की तरह से किया जाता है। इस प्रकार वक्त शब्द काल भाग्य किस्मत नसीब आदि के लिए इस्तेमाल होता है। 'वक्त का क्या ठिकाना' 'वक्त बुरा है' 'वक्त से बच कर चलो' 'वक्त सब कुछ करा देता है' 'वक्त ने साथ नहीं दिया', आदि मुहावरों से भी यह स्पष्ट है।

नसीब —भाग्य प्रारब्ध किस्मत मुकद्दर आदि के अर्थों में 'नसीब' का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। मुहावरों में भी भाग्य के अर्थ में 'नसीब' का प्रयोग काफी मात्रा में होता है जैसे—नसीब में यही बदा था आदि।

नियति के पर्यायों का वर्गीकरण —

नियति के उपरोक्त पर्यायवाची शब्दों का व्युत्पत्तिपरक और प्रवृत्तिपरक अर्थों के सन्दर्भ में विवेचन विश्लेषण करने के पश्चात् यह धारणा बनती है कि सभी शब्दों की आत्मा एक नहीं है। उक्त भिन्न भिन्न शब्दों का भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। कुछ शब्द क्रिया अथवा फल सूचक हैं तो कुछ कर्ता का बोध कराते हैं। इसी प्रकार कुछ शब्द किसी अलक्ष्य दैवी सत्ता की ओर संकेत करते हैं तो कुछ शब्द कार्य-कारण की परम्परा से युक्त अन्य नियम विधान को प्रकट करते हैं। इन आधारों पर 'नियति' के पर्यायों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

| क्रिया अथवा फल सूचक शब्द | कर्ता बोधक शब्द | दिव्यता सूचक शब्द | नियम बोधक शब्द |
|---|---|---|---|
| भाग्य | अदृष्ट (भाग्य के अर्थ में) | दैव | नियति |
| प्रारब्ध | विधि | सितारा | ऋत |
| भवितव्यता | विधाता | हठ | कर्म |
| भावी | काल | संयोग | अदृष्ट (वैशेषिक) |
| होनी | नियति (चेतन सत्ता) | | दृष्टिकता |
| होनहार | वक्त | | |
| भागधेय | | | |
| कृतान्त | | | |
| भाग्यांश | | | |
| तकदीर | | | |
| नसीब | | | |
| किस्मत | | | |
| ललाट रेखा | | | |
| मुकद्दर | | | |

उपरोक्त शब्दों में से अदृष्ट तथा नियति ऐसे शब्द हैं जिनका बहुधा द्वि-अर्थक प्रयोग होता है। अदृष्ट मुख्यतः कर्ता बोधक रूप में भाग्य का पर्यायवाची बन कर प्रयोग में आता है किन्तु वैशेषिकों ने इस शब्द को कार्य कारण परम्परा सहित नियम बद्धता के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार नियति को कुछ लोग चेतन सत्ता मानते हैं ऐसा स्वीकार कर लेने पर यह कर्ता वाचक शब्द बन जाता है। किन्तु जन्मवादी दार्शनिक नियति का प्रयोग अवश्यंभावी नियम परम्परा के अर्थ में करते हैं।

निष्कर्ष :—नियतिवादी भावना को व्यक्त करने के लिए इतने अधिक पर्यायों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे देश में यह एक व्यापक भावना रही है। जन समुदाय में भी इतने अधिक शब्दों की प्रचुरता से प्रयोग होना यही प्रकट करता है कि यह भावना मानव मन में काफी गहरी बैठ गई है। वाल्मीकि रामायण में अवश्य ही राक्षस पात्र नियति भाग्य आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते जिससे कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि

दैव सिद्धान्त आर्य सिद्धान्त ही था और राक्षसों ने इसे मान्यता प्रदान नहीं की थी। किन्तु ऐसा कहना सर्वांश में सत्य नहीं है क्योंकि उक्त ग्रन्थ में राक्षस स्त्रियों ने दैव शब्द का यत्र-तत्र प्रयोग किया है।[1] हमारा उद्देश्य यहाँ इस वाद विवाद में पड़ना नहीं मात्र यहाँ सिद्ध करना है कि आर्य लोगों में ही नहीं, राक्षस समुदाय में भी भाग्यवादी भावना का किसी अंश में प्रचार अवश्य था।

शब्दों का संस्कृति से भी अटूट सम्बन्ध होता है। एक ही भाव विशेष को व्यक्त करने के लिए लोक प्रचलित इतने अधिक शब्दों से यह संकेत भी मिलता है कि हमारी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में भी भाग्य नियति आदि अदृश्य शक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन सभी शब्दों के मुख्य रूप से दो विभाग बन गये हैं। कुछ शब्द—जैसे ऋत नियति कर्म आदि—ऐसे शब्द हैं जो कार्य-कारण की शृंखला को लेकर चलने वाले अटल नियम विधान के सूचक हैं, तथा अन्य कुछ शब्द—जैसे दैव अदृष्ट विधाता आदि—ऐसे शब्द हैं जो किसी अटल नियम विधान की मान्यता को तो स्वीकार नहीं करते लेकिन किसी अलक्ष्य दिव्य शक्ति की सत्ता अवश्य मानते हैं। शब्दों के ये दो विभाग इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि भाग्यवादी तथा नियमवादी दो प्रकार की नियम भावना हमारी संस्कृति में विद्यमान है।

यहाँ पर यह प्रश्न भी विचारणीय है कि इस विश्व में मात्र 'नियम' ही है अथवा उस 'नियम' का कोई नियामक भी है? यह प्रश्न जड़वादी और अध्यात्मवादी दार्शनिकों के मध्य अत्यन्त मतभेद का विषय रहा है। प्रथम-वर्ग के विचारक प्रकृति की कार्य-कारण परम्परा को तो मानते हैं पर उसके पीछे किसी चेतन सत्ता का अस्तित्व उन्हें स्वीकार्य नहीं। द्वितीय वर्ग के विचारकों की मान्यता है कि प्रकृति के समस्त नियमों का नियन्ता चेतन ईश्वर ही है।

समस्त पर्यायवाची शब्दों के प्रकृति और व्युत्पत्ति लभ्य अर्थों के समवेक्षण से ज्ञात होता है कि नियति सम्बन्धी यह भावना व्यापक होने के साथ-साथ अत्यन्त ही धूमिल अस्पष्ट और जटिल भी है। सभी शब्दों के विषय में कहा जा सकता है कि लोग इनका एक ही विशेष अर्थ में प्रयोग न कर परिस्थिति प्रसंग और कार्य-व्यापार की पृथकता के कारण भिन्न भिन्न संदर्भों में प्रयोग करते हैं जिससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 'नियम विषयक यह प्रत्यय (Concept) स्थितिशील नहीं गतिशील है—निरपेक्ष नहीं सापेक्ष

(१) दैव चेष्टायते सर्व हत दैवेन हन्यते। —वा० रा० [illegible]

है। इसी कारण इसे हृदयगम करना तथा इसे सुनिश्चित अर्थवत्ता प्रदान करना कठिन ही नहीं असम्भव सा जान पड़ता है।

फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि हमारे देशवासी इस समस्त ब्रह्माण्ड के पीछे निश्चित नियम को मान कर चले और हमारा नियतिवाद कार्य कारण की अटूट श्रृंखला को लेकर चला। ग्रीकवासियों की जो भाग्यवादी कल्पना है वैसी कल्पना हमारे देश में सामान्यत नहीं मिलती। भारतीय दर्शन का मुख्य स्वर कर्मवाद ही है अन्धा भाग्यवाद हमारी विचार धारा की परिधि में नहीं आता।

नियति शब्द के सम्बन्ध में तथा उसके पर्यायों को लेकर ऊपर जो विवेचन प्रस्तुत किया गया है उससे इस शब्द के तीन प्रकार के अर्थ हमारे सम्मुख स्पष्ट होते हैं —

(क) किसी सुनिश्चित नियम पद्धति का नाम नियति है।

(ख) अखिल ब्रह्माण्ड में जो व्यवस्था व्याप्त है उसके मूल में कोई चेतन सत्ता है जिसे नियति कहते हैं।

(ग) भाग्य के अर्थ में नियति का प्रयोग अत्यन्त प्रसिद्ध है। यथा

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थ
सो वश्य भवति नणां शुभो शुभो वा।
भूतानां महति कृते पि हि प्रयत्ने
नाभाव्य भवति न भाविनोस्ति नाश [१]

अर्थात् मनुष्य के लिए जो कुछ भी शुभ या अशुभ नियति के बल पर होने वाला है वह होकर ही रहेगा। प्राणी चाहे कितना भी बड़ा प्रयत्न करे जो कुछ नहीं होने वाला है नहीं होगा और इसी प्रकार जो होने वाला होगा उसका नाश भी नहीं हो सकेगा।

आगे हम नियति अथवा नियतिवाद शब्दों का प्रयोग यथास्थान इन तीनों अर्थों में करेंगे।

नियतवाद विषयक कतिपय पाश्चात्य मत —

जिस प्रकार हमारे यहाँ नियतिवाद शब्द बहुप्रचलित है वैसे ही पाश्चात्य दर्शन में डिटरमिनिज्म (Determinism) शब्द व्यापक रूप से प्रयुक्त हुआ है डिटरमिनिज्म के लिए नियतवाद हानवाद अवधारणवाद निश्चितवाद आदि

(१) उत्तररामचरितम् ६। १६५

अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उक्त शब्द के पर्याय के रूप में 'नियतवाद' (नियतिवाद नहीं) शब्द का प्रयोग समीचीन जान पड़ता है। नियतवादियों के अनुसार व्यक्ति निश्चित नियमों द्वारा अनुशासित होता है। वंशानुक्रम, चरित्र, वातावरण आदि का पूरा प्रभाव उस पर पड़ता है और वह समान परिस्थियों में एक समान व्यवहार करता है। परिस्थियाँ बदल जाने पर उसके व्यवहार में भी परिवर्तन हो जाता है। जे० बी० वाटसन आदि व्यवहारवादी यह मानकर चलते हैं कि किसी मनुष्य के व्यक्तित्वनिर्माण तथा व्यवहार-पद्धति पर वातावरण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। यदि किसी भी व्यक्ति के पूर्ववर्ती जीवन का ज्ञान हो तो उसके व्यवहार के सम्बन्ध में एक प्रकार से भविष्यवाणी की जा सकती है। व्यक्ति हेतुवाद (Law of Causality) के अनुसार कार्य कारण पर निर्भर है और उसे किसी भी प्रकार की इच्छा की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। नियतवादियों की दृष्टि में हेतुवाद और इच्छा स्वातन्त्र्य दो विरोधी शब्द हैं। ह्यूम के मतानुसार व्यक्ति किसी भी काम को स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं कर सकता क्योंकि उसके लिए अपनी इच्छा शक्ति का पूर्णतः नियन्त्रित करना सम्भव नहीं है। शाप्स की भाँति ह्यूम भी नियतवाद का समर्थक था उसके मतानुसार मनुष्य के सभी कार्य अवश्यम्भाविता (Necessity) के कठोर नियमों का अनुसरण करते हैं और उसे किसी भी प्रकार का स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं है। स्पिनोज़ा की भी मान्यता थी कि ससीम मानव स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता स्वतन्त्र तो केवल ईश्वर है। स्वतन्त्र इच्छा शक्ति केवल ईश्वर का धर्मित्व है जो असीम एवं अनन्त है।

दूसरा वर्ग ऐसे भी विचारक हैं जिन्हें अनियतवादी (Indeterminist) कहा गया है। उनके मतानुसार व्यक्ति जब कोई चुनाव अथवा निर्णय करता है तो वह किसी पूर्ववर्ती योजना अथवा अनागत उद्देश्य को दृष्टि में रख कर ऐसा नहीं करता। उसके निर्णय में संयोग-तत्व की ही प्रमुखता देखी जाती है। जेम्स मार्टीन उक्त मत के समर्थकों में से हैं।

नियतवाद और अनियतवाद के अतिरिक्त एक तीसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त भी है जिसे आत्म नियतवाद (Self determinism) के नाम से अभिहित किया जाता है। अरस्तू के समय से ही इस सिद्धान्त का प्रचलन रहा है। इसके अनुसार व्यक्ति भले या बुरे के चुनाव में स्वतन्त्र है। वह उन्हीं क्रियाओं को चुनता है जो उसके उद्देश्यों से रूप में सामंजस्य रखते हैं। न प्रयोजन मनुष्य मन्द प्रसङ्ग बिना किसी प्रयोजन के तो मूर्ख व्यक्ति भी किसी

काम में प्रवृत्त नहीं होता। चुनाव की स्वतंत्रता होने के कारण ही सत् असत्, पाप-पुण्य तथा भले-बुरे का दायित्व उस व्यक्ति विशेष का माना जाता है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक काण्ट के मतानुसार इच्छा स्वातन्त्र्य का व्यावहारिक मूल्य है। इच्छा की स्वतंत्रता ही तो नैतिकता की आवश्यक मान्यता (Postulate) है। वैसा भी मनुष्य की स्वतंत्रता के पश्चात्ता में से है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि नियतवाद तथा अनियतवाद दोनों में सत्यांश निहित है। आत्म निर्णय अथवा आत्म नियतवाद द्वारा उक्त दोनों प्रतिवादों में सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकता है। यह कहना यथार्थ के अधिक निकट होगा कि मनुष्य न तो भौतिक वस्तु के समान परतः प्रेरित (Determined) है और न वह स्वेच्छाचारी (Indetermined) अपितु अपनी आत्मा के प्रकाश में उसमें आत्म नियन्त्रण (Self determination) की क्षमता है।

भौतिक विज्ञान और नियतवाद —

वैज्ञानिक दृष्टि के आलोक में यह विचारणीय है कि इस विश्व में कार्य कारण सिद्धान्त अव्यभिचरित रूप से लागू होता है अथवा कुछ ऐसे भी कार्य या ऐसी भी घटनाएं हैं जिनकी परिणति केवल संयोग की क्रीड़ा है ?

वैज्ञानिकों के मतानुसार कार्य कारण सिद्धान्त और नियतवाद में थोड़ा अन्तर किया जा सकता है। रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आती है किन्तु रात दिन का कारण नहीं और न दिन ही रात का कारण है। फिर भी दिन को देखकर हम भविष्यवाणी कर सकते हैं कि दिन के बाद रात अवश्य होगी इसी प्रकार रात के बाद दिन अवश्य होगा। यह तो हुआ नियतवाद (Determinism) किन्तु यदि हम यह कहें पृथ्वी के संक्रमण से दिन और रात होते हैं तो पृथ्वी का संक्रमण दिन और रात का कारण है—इसे हम हेतुवाद (Causality) अथवा कार्य-कारण सिद्धान्त कह सकते हैं।

इस सम्बन्ध में हम पुराने भौतिक-शास्त्री न्यूटन और गतिविदों के बहुत ऋणी हैं। वे यह मानकर चलते थे कि यदि किन्हीं प्रारंभिक स्थितियों का ज्ञान हो जाय तो किसी पदार्थ के कण (Particles) के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती है। न्यूटन यांत्रिकवाद (Newtonian Mechanics) के मतानुसार हेतुवाद तथा नियतवाद दोनों ही सत्य मान गये। नवीन आगे चलकर कर्मों के सम्बन्ध में उक्त यांत्रिकवाद के सिद्धान्त से

काम न चला । उसके स्थान में सांख्यिकी सिद्धान्त (Law of Statistics) का प्रचलन हुआ । आगे चलकर जब मालिक्यूल्स प्रोटोन्स आदि का अध्ययन किया जाने लगा तो वे शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्रों द्वारा भी दृष्टि पथ में न आ सके । इसकी व्याख्या के लिए सम्भाव्यता सिद्धान्त (Theory of Probability) की आवश्यकता पड़ी । प्रश्न यह था कि क्या हम किसी कण की स्थिति या वेग दोनों का एक साथ निर्धारण कर सकते हैं ? बड़ी वस्तुओं के लिए तो यह भले ही सम्भव हो किन्तु छोटे कणों अथवा अणुओं के लिए यह असम्भव है । देखने के लिए प्रकाश अपेक्षित है किन्तु प्रकाश भी तो सूक्ष्म-कणों की धारा का ही रूप है । जब हम विद्युत्कण का परीक्षण करते हैं तो प्रकाश का आश्रय लेते हैं लेकिन ऐसा करने से उस कण की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है । इसलिए मूल स्थिति के स्थान में हम उसके परिवर्तित रूप का ही ज्ञान कर पाते हैं । इस प्रकार वस्तु निर्धारण में अनिश्चयात्मकता की स्थिति का आना अनिवार्य हो गया । हेजेनबर्ग (Heisenberg) ने अनिश्चयात्मकता का निर्धारण करते हुए कहा है कि प्रकृति में नियतवाद नहीं अनियतवाद पाया जाता है ।

यद्यपि भौतिक विज्ञान में किसी सूक्ष्म कण की स्थिति (Position) और वेग (Velocity) को एक साथ नहीं मापा जा सकता किन्तु हमें निर्णय करना होगा कि दोनों में से एक को चुनें । मस्तिष्क की भौतिक रासायनिक प्रक्रिया (Physico-Chemical Process) के परीक्षण में भी यही बाधा आएगी । क्योंकि ऐसा करने पर मानसिक प्रक्रिया में भी बाधा पड़ेगी ।

भौतिक विज्ञान किसी सीमा तक मानसिक स्वातन्त्र्य को स्वीकार करता है किन्तु पूर्ण स्वतन्त्रता सम्भव नहीं । आइन्स्टीन ने यद्यपि यह माना कि अनियतवाद में सच्चाई है किन्तु उसने इसमें पूर्णतः विश्वास नहीं किया और न ही अपने विश्वास के लिए उसने कोई तर्क ही प्रस्तुत किया ।

निष्कर्ष —नियतवादी दृष्टिकोण के समर्थक अपने मत की पुष्टि में तर्क देते हुए कहा करते हैं कि ऊपर फेंका हुआ पत्थर यह सोच सकता है कि वह स्वतन्त्र है किन्तु वस्तुतः वह गुरुत्वशक्ति के नियन्त्रण में है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह प्राचीन तर्क उस युग से सम्बन्ध रखता है जब प्राचीन लप्लासवादी नियतवाद ( Laplacien Determinism ) स्वीकार किया गया था । जैसा ऊपर कहा गया है सन १९०० के लगभग उसका स्थान संख्यात्मक नियतवाद ( Statistical Determinism ) ने ले लिया

जिसमें संयोग की प्रधानता है और जो सैद्धान्तिक रूप से इस बात को स्वीकार कर लेता है कि अस्थिरता में अन्ततः नियम के विरोध करने की क्षमता है। इस धारणा के अनुसार उक्त घटना में यह सोचा जा सकता है कि ऊपर फेंका जाने वाला पत्थर नीचे न गिरे। किन्तु व्यवहार में ऐसा कभी नहीं होता। दार्शनिक और तार्किक दृष्टि से भी यह तर्क निरर्थक है। पहली बात ( पत्थर की गति ) तो असन्दिग्ध और दूसरी बात ( मनुष्य की गति ) सन्दिग्ध है।[१] पत्थर चाहे कुछ भी सोचे ( यदि उसमें सोचने की शक्ति दलील के लिए ही मान लें) हम प्रयोगात्मक रूप से जानते हैं कि उसके लिए पसन्दगी या चुनाव का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि हमने पत्थर को कभी गुरुत्वाकर्षण के नियम के विपरीत काम करते देखा ही नहीं। मान लीजिए पत्थर सोचता भी है तो उसने अवश्य ही निर्णय कर लिया होगा कि वह भूमि पर ही गिरे। किन्तु मनुष्य के सम्बन्ध में यह सोचना होगा कि क्या उसका विकास भी यान्त्रिक तथा केवल परतः प्रेरित है ? प्रश्न यह है कि वह मात्र अपनी पाशविक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कार्य करेगा अथवा विवेक तथा स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का आश्रय लेकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा ? यदि मनुष्य का कार्य व्यापार केवल यान्त्रिक ही हो तो भावी विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती किन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य प्रगतिशील है उसके पास विवेक और स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का बल है। यह सत्य है कि वह नियमों तथा परिस्थितियों से भी बंधा हुआ है किन्तु वह आत्म निर्णय में स्वतन्त्र भी है अन्यथा किसी बुरे कार्य के लिए उसका कोई दायित्व नहीं रहेगा और न ही वह मानव विकास की मंजिलों को पार करता हुआ आगे बढ़ सकेगा।

अस्तित्ववाद और नियतिवाद —

यूरोप के बहुचर्चित और अधुनातम दर्शन अस्तित्ववाद में भी नियति के सम्बन्ध में ध्यानाकर्षक विवेचना हुई है। इसके व्याख्याता कीर्कगार्द, नीत्से तथा जाँ पाल सार्त्र प्रभृति दार्शनिकों के मतानुसार मनुष्य के लिए बुद्धिगत उपलब्धियों का तब तक कोई महत्व नहीं जब तक वह अपने अस्तित्व को न पहचाने। विज्ञान द्वारा उपलब्ध सारे वाद सूक्ष्मीकरण या भावात्मक अमूर्त वस्तुओं की अभिलाषाएं मानवीय जगत की आधार भूमि के बिना निरर्थक ही रह जाती हैं। अतः अस्तित्ववाद मानवीय अस्तित्व की समग्र स्वीकृति को अत्यन्त आवश्यक मानता है जो तभी सम्भव है जब मनुष्य अपने आप पर दृढ़ विश्वास और आस्था रखे। दूसरे

(१) सरस्वती — नाथ मनुष्य का भाग्य पृ ४२-४३

दर्शन मे अस्तित्ववाद पुरुषार्थवादी दर्शन है और वह यह मानने को कदापि तयार नही कि मानव भाग्य अथवा नियति के हाथों की कठपुतली है। भाग्यवाद अथवा नियतिवाद की अपेक्षा अस्तित्ववाद मनुष्य की आत्म निर्णया त्मिका बुद्धि और स्वतत्र इच्छाशक्ति पर अधिक बल देता है।[१]

हार्डी का नियतिवाद —

नियतिवाद (Fatalism) के विषय म हार्डी का उल्लेख यत्र-तत्र किया जाता है। अत यहाँ उसके विषय म दो शब्द कहना अप्रासगिक न होगा।

हार्डी के उपन्यासो म शिल्प वस्तु और चरित्र सभी पर नियति का व्यापक प्रकोप फार फ्राम दि मडिंग क्राउड से लेकर जूड दि आ बस्योर तक देखा जा सकता है। यद्यपि ईश्वर जसी किसी अलौकिक सत्ता म उसका विश्वास नहीं था किन्तु दव (Destiny) तथा सयोग (Chance) को वह पूर्णत स्वीकार करता था। उसके पात्रो के लिए दव तथा सयोग ऐसी क्रूर शक्तियाँ हैं जो उनकी पहुँच और समझ के बाहर हैं तथा जिनके हाथो म वे कठपुतली क समान नाचते रहते हैं। उसके उपन्यासो म पात्र द्वारा नियति का निर्धारण नही होता अपितु नियति द्वारा पात्र निर्धारित होते हैं।[२]

इस विषय म शचीरानी गुर्टू की ये पक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं, प्रारभ स ही हार्डी की धारणा है कि मनुष्य केवल कम के लिए है कम चाहे छोटा हो

---

१ अस्तित्ववाद इतिहास और भाग्य को व्यथ मुखालफत नहीं करता और न सब क लिए सामान्यतया आवश्यकता पूर्ति की स्वतत्रता पर ही जोर देता है यह तो सिफ इतना ही कहता है कि व्यक्ति अपने आप म स्वतत्रता की आवश्यकता अनुभव करता है इसे मान लेना चाहिए यही अस्तित्ववाद की पहली और असली शत है।

—पृथ्वीनाथ शास्त्री अस्तित्ववाद एक पुनरीक्षण माध्यम फरवरी १९६६ पृ० ३५–३६

2 Character does not determine destiny in his novel but destiny claps character into a straight jacket

—N M Kulkarni (Thomas Hardy as a Novelist) B H U Magazine Oct –Dec 1931

अथवा वह मनुष्य के अधीन नहीं वरन् वह ही पूर्ण रूप से उसके अधीन है टस ओर जड दि आत्मवयोर म मानव और परा शक्ति का द्रष्टव्य है मानो अदृष्टलिपि के असीम आदेशों म उनकी समस्त क्रियाएं और प्राणों का प्रश्नवाचक अस्तित्व निगडनिबद्ध है।[1]



(१) शचीरानी गुर्टू साहित्य दर्शन भाग १ पृ० ३९६

# भारतीय नियतिवाद का उद्भव और विकास

ऋग्वेद से लेकर वर्तमान कालीन साहित्य तक भारतीय नियतिवाद की अपनी सुदीर्घ परम्परा रही है। किन्तु प्रतिपाद्य विषय की सीमाओं के कारण हम केवल भारतीय-दर्शन ( योगवासिष्ठकार ) तक ही इसका पर्यवेक्षण कर सके हैं। उन स्थलों को अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में प्रसाद की नियति भावना से हो सकता है। इस विहगावलोकन के आधार निम्न ये हैं —

(१) वैदिक साहित्य
(२) उपनिषद् साहित्य
(३) पौराणिक साहित्य
(४) महाकाव्य साहित्य
(५) भारतीय दर्शन

## वैदिक साहित्य

### वैदिक ऋतवाद

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में सृष्टि सम्बन्धी समस्त घटनाओं का संचालन एक ऐसे अखण्ड नियम द्वारा माना गया है जो मूलतः नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है। ऋग्वेद में इस नियम को 'ऋत' के नाम से अभिहित किया गया है।[१] वैदिक ऋषियों ने इस तथ्य का अनुभव कर लिया था कि इस विश्व में अव्यवस्था नाम की कोई भी वस्तु नहीं है। सभी वस्तुएं एक व्यापक नियम से आबद्ध हैं। इसीलिए कोई भी चीज यदृच्छा से प्रवृत्त नहीं होती। दिन के अनन्तर रात्रि का आगमन, फिर नित्य प्रातःकालीन स्वर्णिम सविता का उदय, रात्रि के समय चन्द्र रश्मियों का आविर्भाव और वृष्टि से पूर्व काले कजरारे मेघों की उमड़ घुमड़ आदि प्राकृतिक दृश्यों को देखने वाले ऋषियों को यह पूर्णतः विश्वास हो गया था कि समस्त ब्रह्मांड में कोई सुनिश्चित व्यवस्था या नियम अवश्य कार्य कर रहा है। उसी व्यवस्था को उन्होंने 'ऋत' की संज्ञा दी। विश्व में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला 'ऋत' ही है, जिसे अपरिवर्तनीय नैतिक-व्यवस्था के नाम से अभिहित किया जाता है। वरुण

---

(१) ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत—ऋग्वेद १०–१९०–१।

'ऋत का अधिष्ठाता देव है जो प्रत्येक प्राणी के कर्मों पर दृष्टि रखता है जो अत्यन्त कठोर कर्तव्यनिष्ठ है तथा सभी प्राणियों को उनके कर्मानुसार फल अवश्य देता है।

ऋग्वेद के अनुसार ऋत समस्त चीजों का प्रकृतिस्थ रखता है। ऋत के कारण ही अग्नि प्रज्वलित होती है हवा बहती है पानी प्रवहमान होता है और ऋतु चक्र चलता है। सूर्य चन्द्र और अन्य ग्रह उपग्रह भी इसी के कारण गतिवान हैं। ऋत ब्रह्माण्ड की सार्वभौम सत्ता है मनुष्यों के कर्मों का मूलाधार है तथा व्यष्टि और समष्टि में शक्ति सन्तुलन का कारण भी। इस प्रकार ऋत ही समस्त नियमों को आधार मिला है।[1]

वैदिक साहित्यानुशीलन से ऋत सत्य धर्म और कर्म की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दैववाद अथवा भाग्यवाद वैदिक साहित्य का स्वर नहीं है।[2] वैदिक ऋषि हाथ पर हाथ धरे बैठ रहने की अपेक्षा पुरुषार्थ और गतिशीलता की महत्ता पर बल देते रहे जैसा कि वैदिक चरवेतिगान से स्पष्ट है —

चरन्वै मधुविन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्यश्रमाणयोन तन्द्रयते चरन्। चरवेति चरवेति।

अर्थात् चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो चलते रहो।

वास्तव में ऋग्वेद की मूल आत्मा चरवेतिगान के रूप में दिया गया कर्म का संदेश ही है क्योंकि वैदिक ऋषियों ने कर्म को जीवन का आवश्यक अंग मानकर स्वीकार किया।[3]

---

(1) Swami Satprakasha Nand The Vedic Testimony and its Specially 2 Prabudha Bharat (April 1962) P 175

(२) श्री परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार वैदिक साहित्य में भाग्यवाद के अर्थ नियति का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

देखिए भारतीय साहित्य (आजीवकों का नियतिवादी सम्प्रदाय) जुलाई १९५८ पृ ३७।

(3) The Path of Action (कर्मयोग) is as important according to the Vedas as the path of knowledge In later religious literature we find a tendency evil but in the Vidas action is accepted as an essential part of life

[1]A C Bose The call of the Vidas Chapter V P 207

ऋत के अनुसार अच्छे कार्य का अच्छा और बुरे काम का बुरा फल मिलता है जिसके परिणामस्वरूप विश्व में कहीं कोई अव्यवस्था नहीं रह जाती। जो जैसा बोता है वह वैसा ही पाता है। इससे प्रतीति होती है कि इसी कठोर ऋतवादी सिद्धान्त ने ही आगे चलकर कर्मवाद को जन्म दिया। बल्कि कर्मयोग वैदिक ऋतवाद का ही विकसित रूप लगता है। वैदिक ऋत के अधिष्ठाता देव वरुण हैं और वरुण ही कर्म देवता के रूप में सर्वत्र विख्यात हैं। यही नहीं कर्मवाद पुनर्जन्म का पोषक भी है। यह साम्य दर्शाता है कि ऋतवाद ही आगे चलकर कर्मवाद में विकसित हुआ। डा० ए० सी० बोस का भी यही मत है।[1]

इस आलोक में देखने पर भी ऋतवाद किसी दशा में भाग्यवादी नहीं कहा जा सकता। ग्रीकवासियों ने अपने दुःखान्त नाटक में जिस अन्ध, क्रूर और विनाशकारी और ईश्वराधीन भाग्य का चित्रण किया है वह सर्वथा अभारतीय है। वैदिक साहित्य में कहीं भी उसका किंचितमात्र उल्लेख भी नहीं मिलता। हाँ वेदों के परवर्ती भारतीय साहित्य में अवश्य उसके दर्शन यत्र-तत्र होते हैं।[2]

## उपनिषद् साहित्य

उपनिषद् साहित्य में भी नियति, कर्म, प्रारब्ध आदि शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्कार ने जगत के कारणों को ढूँढ़ते हुए नियति का उल्लेख किया है —

---

(1) In India however Rita never became foreordination it remained Eternal Law and Eternal Justice As a result however of the working of Eternal Justice there could be no escape from the consequences of our deeds, a man must reap as he sows So the conception of stern Rita led to the doctrine of Karma Ibid ( introduction ) P 50–51

(2) Like the Greek conception of Fate Rita does not derive its power from the will of the gods but above divinity

काल स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनि पुरुष इति चिन्त्या ।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःख हेतोः ।[१]

अर्थात् काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत और कारणत्व ये सब पुरुष की भांति अचिन्त्य हैं ( अर्थात् इनके विषय में कुछ नहीं सोचा जा सकता ) इनके संयोग के कारण, न कि आत्मभाव के कारण, आत्मा भी सुख दुःख के लिए स्वयं प्रभु नहीं है। कठोपनिषद् में कर्म फलभोग का स्वीकार किया गया है —

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।[२]

अर्थात् अपने कर्म और अपने ज्ञान के अनुसार शरीर प्राप्ति के लिए कुछ देहधारी योनि प्राप्त करते हैं और अन्य अचल भाव (वृक्ष, पत्थर आदि) को प्राप्त होते हैं।

ईशोपनिषद् में कर्म का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि काम करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो —

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः

बृहदारण्यक उपनिषद् में उद्दालक के द्वारा अन्तर्यामी ईश्वर की व्याख्या चाहने पर मुनि याज्ञवल्क्य उसे समझाते हैं — यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः[३] — जो पृथ्वी में रहने वाला पृथ्वी के भीतर है, जिसे पृथ्वी नहीं जानती, जिसका पृथ्वी शरीर है और जो भीतर रहकर पृथ्वी का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है।[४]

त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद् के उत्तरकाण्ड के पंचम अध्याय में संसार मुक्ति पाने के उपाय बताते हुए पुनर्जन्म, कर्मफल तथा प्रारब्ध का सुन्दर विवेचन

---

But Greeks found in Fate a power which even the gods could not withstand. This led to the typical Greek conception of tragedy that man was a helpless victim of Fate. India too, came near the Greek idea of Predeterminism. But this was in later ages. In the Vedas there is no pre-determinism. Ibid. p. 50-61

संदर्भ १, २, ३, ४ देखिए—कल्याण उपनिषदांक (१९४९ई०) पृ० ६२५, ३०

किया गया है "निन्दनीय, अनन्त जन्मों में बार बार किये हुए अत्यन्त पुष्ट अनेक प्रकार के विचित्र अनन्त दुष्कर्मों के वासना समूहों के कारण जीव को शरीर एवं आत्मा के पृथक्त्व का ज्ञान नहीं होता अनेक प्रकार के विचित्र स्थूल सूक्ष्म, उत्तम-अधम अनन्त शरीरों को धारण करके उन उन शरीरों से विहित (प्राप्त होने योग्य) विविध विचित्र अनेक शुभ अशुभ प्रारब्ध का भोग करके उन उन कर्मों के फल की वासना से वासित (लिप्त) अन्तःकरण वाला भी बार बार उन उन कर्मों के फल रूप विषयों में ही प्रवृत्ति होती है। [१]

इसी स्थल पर आगे चलकर संसार पार करने के अनेक उपायों में एक उपाय पूर्वजन्म के पुण्यफलों को भी बताया गया है अनेक जन्मों के किये हुए अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्यों के फलोदय से सम्पूर्ण वेदशास्त्र के सिद्धान्तों का रहस्यरूप सत्पुरुषों का मत प्राप्त होता है। तब सदाचार में प्रवृत्ति होती है। सदाचार से सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है। पाप नाश से अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो जाता है। [२]

नादबिन्दूपनिषद् में प्रारब्ध कर्मों की महिमा इन शब्दों में प्रस्तुत की गई है, "महामत निरन्तर प्रयत्न करके आत्मा के स्वरूप को जानकर उसी के चिन्तन में अपना समय व्यतीत करो। समस्त प्रारब्ध कर्मों के भोगों को भोगते हुए तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिए। आत्म ज्ञान होने पर भी प्रारब्ध स्वयं नहीं छोड़ता।"[३]

अध्युपनिषद् में भगवान आदित्य साङ्कृति मुनि को पूर्वजन्मों के कर्म फल की महिमा समझाते हुए कहते हैं सब कुछ पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के फल रूप में उपस्थित है अथवा सब कुछ ईश्वराधीन है। [४]

श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि ईश्वर को ही कर्म का अधिष्ठाता बताते हुए कहते हैं —

---

(१) वही पृ० ७२१

(२) वही पृ० ७२१

(३) वही, पृ० ६७०

(४) वही पृ० ६८७

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।[1]

अर्थात् एक देवता सारे प्राणियों में छिपा हुआ है जो कि सर्वव्यापी है सारे प्राणियों का अन्तरात्मा है कर्मों का अधिष्ठाता है सारे प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है सर्वद्रष्टा है अकेला है और निर्गुण है ।

## पौराणिक साहित्य

वेदों तथा उपनिषदों के पश्चात् पुराणों में भी नियतिवादी भावनाएं व्यक्त की गई हैं । कर्म, कर्मफल, भाग्य, दैव आदि की चर्चा रूप में यह भावना पुराणों में अनेक स्थलों पर मिलती है ।

मत्स्यपुराण में पुरुषार्थ और काल के अतिरिक्त फल प्राप्ति का तृतीय कारण भाग्य को माना गया है । मनु को समझाते हुए मत्स्य भगवान कहते हैं —

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम ।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात्फलावहम् ।[2]

अर्थात् हे पुरुषोत्तम दैव पुरुषार्थ और काल ये तीनों मिलकर ही मनुष्य को फल प्रदान करते हैं ।

मनु के यह पूछने पर कि दैव बड़ा है अथवा पुरुषार्थ मत्स्य भगवान् कहते हैं —

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम् ।
तस्मात्पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।[3]

अर्थात् पूर्वजन्म में किए गए कर्मों को ही दैव समझो । इसलिए बुद्धिमान व्यक्तियों ने पौरुष को ही श्रेष्ठ बताया है ।

भाग्य यदि प्रतिकूल हो तो भी पुरुषार्थ से उसे बदला जा सकता है —

प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते ।
मंगलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम् ।[4]

---

(१) श्वेताश्वतरोपनिषद् ६–११
(२) मत्स्यपुराण २२१–८
(३) वही २२०–२
(४) वही २२०–३ ।

अर्थात् नित्य उन्नतिशील तथा नित्य मांगलिक आचरण करने वाले व्यक्ति पुरुषार्थ द्वारा प्रतिकूल दैव को भी नष्ट कर सकते हैं।

आगे मत्स्य भगवान मनु को समझाते हैं —

येषामपूर्वं कृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम।
पौरुषेण विना तेषां केषांचिद् दृश्यते फलम्।

हे मनुजश्रेष्ठ, जिनके पूर्वकृत कर्म सात्त्विक हैं ऐसे कुछ लोगों का बिना पुरुषार्थ किए हुए भी फल प्राप्ति होते हुए देखा जा सकता है।

पुरुषार्थ की अनन्त महिमा का बखान मत्स्य भगवान ने आगे और दो श्लोकों में इस प्रकार किया है —

कृष्टिवृष्टि समा योगा दृश्यन्ते फल सिद्धय।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवा काले कथंचन।
तस्मात्सदैव कर्तव्य सधर्म पौरुषं नरं।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम्।[२]

अर्थात् कृषि और वृष्टि के योग के समान फल सिद्धि के योग दृष्टिगोचर होते हैं। वे तो (कृषि और वृष्टि) काल पाकर ही फल प्रदर्शित करते हैं तत्काल कदापि नहीं। इसलिए मनुष्य को विपत्ति में रहते हुए भी धर्मयुक्त पुरुषार्थ सदैव करना चाहिए क्योंकि परलोक में उसे निश्चित रूप से फल मिलेगा।

स्कन्द पुराण में अधम वृत्ति वाले देवल नामक दाक्षिणात्य ब्राह्मण का उल्लेख करते हुए कर्मविपाक के विषय में कहा गया है —

चाण्डालैश्च स्थितो भूमावितश्चेतः श्वपाकिभिः।
तेनकर्मविपाकेन रौरवं नरकं गतः।[३]

अर्थात् वह (देवल ब्राह्मण) भूमि पर इधर उधर चाण्डालों द्वारा घसीटा गया और उस कर्म विपाक के कारण रौरव नरक को प्राप्त हुआ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भगवान श्री कृष्ण नन्द को कर्म फल भोग की अनिवार्यता समझाते हैं —

प्रायश्चित्तेन पुण्येन न हि शुध्यन्ति मानवाः।
सर्वारम्भेण यज्ञेन दानेन योगतोऽपि वा।

---

(१) वही, २२०–४
(२) वही २२०–६, १०
(३) स्कन्द पुराण, ५–६४–४२

नमाशुभच यत् कम विना मोनास च याय ।
भोगेन शुद्धि माप्नोति ततो मक्तिभवेन्नणाम ।[१]

हे वत्स राजा प्रायश्चित और पुण्य स मनुष्य शुद्ध नहीं होता और न ही सब प्रकार के आरम्भो (प्रयत्नो)—दान और योग—स ही वह शुद्ध होता है शुभ या अशुभ जो भी कम हैं योग के बिना उनका नाश नहीं होता। योग स शुद्धि प्राप्त होती है उसके बाद मनुष्यो की मुक्ति होती है।

श्रीमद्‌भागवत म भी कम करने म तथा उसके फल भोगने म मनुष्य को परतन्त्र बताया गया है —

भवाय नाशाय च कम कतु शोकाय मोहाय सदा भयाय।
सुखाय दु खाय च देहयोगमव्यक्तदिष्ट जनतायघत्ते।[२]

अर्थात् ससार म जन्म लेने म मृत्यु मे कम करने म शोक मे, मोह म भय म सुख दु ख प्राप्ति म शरीर प्राप्ति का योग अव्यक्त और अनिर्दिष्ट है। (अर्थात् मनुष्य का किसी बात पर वश नहीं।)

## महाकाव्य साहित्य

भारतीय सस्कृति के अमर भडार रामायण और महाभारत मे भी अनेक स्थलो पर नियति भावना का स्फोट सुन पडता है। आदिकवि वाल्मीकि की पावन पुनीत वाणी नियति का स्तुति गान इन शब्दो मे कर उठती है —

नियति कारण लोके नियति कम साधनम।
नियति सवभूताना नियोगेष्विह कारणम।[३]

नियति ही ससार म कारण है नियति ही कर्मो का साधन है और नियति ही समस्त प्राणियो को कायरत करन म प्रवृत्त है।

लक्ष्मण को दैव की अलघ्य शक्ति स परिचित कराते हुए भगवान राम की उक्ति है—हे लक्ष्मण जिसका ग्रहण कमफल भोग के अतिरिक्त अन्य किसी साधन स नहीं हो सकता उस दैव स कोई भी मनुष्य सघष नहीं कर सकता —

---

(१) ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण—जन्म-खड ८५-३६ ४०
(२) श्रीमद्भागवत ५-१-१३
(३) वाल्मीकि रामायण कि० का० २५-४

कश्चिद् दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान् ।
यस्य न ग्रहणं किंचित्कर्मणो यत्र दृश्यते ।[1]

पुनः राम भाग्य के सम्मुख बड़े से बड़े पुरुषार्थ का व्यर्थ बताए हुए कहते हैं —

ऋषयोऽप्युग्रतपसो दैवेनाभि प्रपीडिताः ।
उत्सृज्य नियमांस्तीव्रान्भ्रश्यन्ते काममन्युभिः ।[2]

अर्थात् उग्रतपवाले ऋषि भी दैव से पीडित होकर कठोर नियमों का परित्याग कर काम और क्रोध के कारण पतनाभिमुख हो जाते हैं।

एक अन्य स्थल पर राम पुनः भाग्य का महात्म्य वर्णित करते हुए लक्ष्मण को समझाते हैं कि भाग्य ही उनके प्रवास का और मिले हुए राज्य को पुनः लौटाने का कारण है —

कृतान्तस्त्वेव सौमित्रे द्रष्टव्यो मत्प्रवासने ।
राज्यस्य च वितीर्णस्य पुनरेव निवर्तने ।[3]

बालि वध के पश्चात् शोकाकुल तारा को विधि विधान की महत्ता का बोध कराते हैं —

त्रयो हि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगा हि तस्य ।
प्रीतिं परां प्राप्स्यसि तां तथैव पुत्रस्तु ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ।[4]

अर्थात् तीनों लोक विधि विधान के वशीभूत हैं और उसका अतिक्रमण करने में सर्वथा असमर्थ हैं। तुमको पुनः वैसी ही प्रसन्नता प्राप्त होगी और तुम्हारा पुत्र यौवराज्य को प्राप्त करेगा।

इसी प्रकार महाभारत में भी अनेक स्थलों पर दैव भाग्य पुरुषार्थ आदि का वर्णन मिलता है। महाभारतकार ने भाग्य की जितनी महिमा गाई है रामायणकार ने उतनी नहीं। युधिष्ठिर तो सर्वथा भाग्यवादी बन हुए हैं। उनका कहना है —

नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि ।
भागधेयान्वितस्त्वर्थं कृशो बालश्च विन्दति ।[5]

(१) वही अयो० कां०, २२–२१ ।
(२) वही २२–२३ ।
(३) वही २२–१५ ।
(४) वही कि० कां०, २३ ४३ ।
(५) महाभारत, अनु० प० अध्याय १६३ ।

अर्थात् भाग्यहीन पुरुष चाहे कितना भी अधिक बल शाली क्यों न है भी वह धन प्राप्ति नहीं कर सकता किन्तु भाग्यवान मनुष्य दुबल और अज्ञानी होते हुए भी अनेक प्रकार के धन उपा ध कर सकता है।

मृत्यु को सवथा दवाधीन मानकर वे कह उठते हैं —

नाप्राप्तकालो म्रियते विद्ध शरशतैरपि।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्ट प्राप्तकालो न जीवति।[१]

अर्थात् जिस मनुष्य का काल (मृत्यु) नहा आया है वह सकडों बाणों से विद्ध होते हुए भी न । मरता किन्तु काल आ जाने पर तृण के अग्रभाग से स्पर्श करने पर भी मर जाता है।

[1] युधि र के भाग्य सम्बन्धी दढ विश्वास को महाभारतकार ने अन्य श्लोकों म भी व्यक्त किया है —

कृतयत्नाफलाश्चैव द य ते यतन्तो नरा ।
अयत्नेन धमाना च द य ते बहवो जना ।
यदि यत्नो भवेन्मत्य स सर्व फलमाप्नुयात्।
नानन्य चोपनम्येत नणा भरतसत्तम।
प्रयत्न कृतव तोपि द श्यन्ते ह्यफला नरा ।
आगत्यागमनरथनिमाण व्यापर सुखी।

एक अन्य स्थान पर महाभारतकार को नयती न बड़े ही सुन्दर न । म कमफल की चर्चा की है —

यथा यथा कमगुण फलार्थी करोत्ययं कमफले निविष्ट ।
तथा तथाय गुणसंप्रयुक्त शुभाशुभ कमफल भजति।[२]

अर्थात् जसे जस फल चाहने वाला मनुष्य कमफल म रत होकर कम के गुणों का करता है वस वस कमगुणों से प्रेरित होकर वह शुभाशुभ फल कमफल को भोगता है।

महाभारत के साथ साथ यहाँ गीता की नियति विषयक मान्यताओं का विश्लेषणावलोकन करना भी अनुचित न होगा। गीताकार ने यद्यपि निष्काम कर्मयोग का मुक्त कंठ से प्रशंसा की है फिर भी दव को किसी काय सिद्धि के लिए पाँचवा और आवश्यक कारण माना है —

(१) वही अध्याय १६३।
(२) वही अध्याय १६ ।
( ) वही गी० प० २०१ २४।

अधिष्ठान तथा कर्ता करण च पृथग्विधम ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा द व चवात्र पचमम ।[१]

—अर्थात् अधिष्ठान कर्ता विभिन्न इद्रियो विविध चेष्टाए और पाँचवाँ कारण दव मनुष्य का शुभाशुभ कम म प्रवित्त करने वाला है।

गीताकार की यह भी मान्यता है कि कल्याण करनेवाला व्यक्ति कभी भी दुर्गति को प्राप्त नही होता —

पाथ नवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
। हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति ।[२]

—हे अजुन उस पुरुष का न तो इस लोक म और न परलोक म ही नाश होता है क्योंकि ( हे प्यारे ) कोइ भी शुभ कम करनेवाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामायण महाभारत और गीता मे भी स्व भाग्य कृतान्त और कम के शुभाशुभ फलो की ध्यानाकषक विवचना हुई है।

## भारतीय दर्शन

वदिक साहित्य स लेकर श्रीमद्भगवद्गीता तक सक्षेप म नियतिवाद' का श्रृंखलाबद्ध इतिहास देखने के पश्चात् अब हम भारतीय दशन मे इसकी परम्परा का पर्यवेक्षण करना है। भारतीय दशन म नियतिवाद का अध्ययन निम्न लिखित क्रम स हो सकता है —

(१) चार्वाक दशन
(२) जन दशन
(३) बौद्ध दशन
(४) मक्खलि गोशाल
(५) षट दशन
(६) आगम दशन
(७) शाकर वेदान्त
(८) योगवासिष्ठ

(१) श्रीमद भगवद गीता १८ १४
(२) वही ६–४०

इन दर्शनो म प्रथम तीनो नास्तिक दर्शन कहे जाते हैं क्योंकि ये वेदों को नही मानते।[१] षड्दर्शन म सभी आस्तिक हैं क्योंकि सभी वेदों का स्वीकार करते हैं किन्तु सांख्य वैशेषिक और मीमांसा दर्शन ईश्वरवादी नहीं।

चार्वाक दर्शन —

यह सर्वथा भौतिकवादी दर्शन है। चार्वाक के अनुसार शरीर ही आत्मा है और ईश्वर नाम की किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। आँखों से जितना दिखलाई पडता है उतना ही संसार है। सत्यता की कसौटी इन्द्रिय गोचरता है अर्थात इन्द्रियों के द्वारा जिन बातों का अनुभव हमें होता है वही वस्तुएं सत्य हैं। उनके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं।[२] इससे स्पष्ट हो जाता है कि चार्वाक दर्शन नियति भाग्य ईश्वर अथवा अदृष्ट किसी म भी विश्वास नहीं करता।

जैन दर्शन —

जैन दर्शन यद्यपि ईश्वर म विश्वास नहीं करता और न ही वेदों की मान्यता को स्वीकार करता है पर कर्म और उनके फलों के भोग पर अटूट विश्वास करता है। जैन दर्शन जीव और कर्म का अनन्त सम्बन्ध वर्णित करता है। आचार्य कुन्दकुन्द का मत है जो जीव इस संसार म स्थित है अर्थात जन्म मरण के चक्कर म पड़ा हुआ है उसके राग रूप और द्वेष रूप परिणाम होते हैं। उन परिणामों से नए कर्म बंधते हैं। कर्मों से गतियों म जन्म लेना पड़ता है। जन्म लेने से शरीर मिलता है शरीर म इन्द्रियाँ होती हैं और इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करता है। फलत इष्ट विषयों से राग और अनिष्ट विषयों से द्वेष करता है। इस प्रकार संसार चक्र म पड़े हुए जीव के भावों से कर्मबन्ध एवं उससे रागद्वेष रूप भाव होते रहते हैं। यह चक्र अभव्य जीवन की अपेक्षा से अनादि सान्त है।[३] इस प्रकार जैन धर्म घोर कर्मवादी दर्शन है जो कि भारतीय परम्परानुकूल भी है।

बौद्ध दर्शन —

जैन मतानुसार ही बौद्ध मत भी कर्म की महत्ता को वर्णित करता है।[४] बौद्ध लोग *भाग्यवाद को नियतिवाद या दैविकता के रूप म* मानते हैं और

(१) नास्तिको वेद निन्दक

(२) बलदेव उपाध्याय *भारतीय दर्शन* पृ० ११६।

(३) कैलाशचन्द्र शास्त्री जैन धर्म पृ १४२।

(४) देखो पुरातन कर्म

दिट्टि का वर्णन कई स्थानों पर 'धम्मपद' में आता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार धम्मपद के अनेक स्थानों की तुलना अनावद या नियतिवाद के दृष्टिकोण से की जा सकती है। (धम्मपद ८१) [१]

बौद्धों के प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु का कोई कारण अवश्य होता है। इस संसार में दुःख है और दुःख का कारण है जन्म ग्रहण जो सर्वथा तृष्णा जन्य है। जब मनुष्य तृष्णा छोड़कर निश्चिंत हो जाता है तो वह दुःख से छुटकारा पाता है और निर्वाण का अधिकारी बन जाता है।

स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म भी कर्म फल और नियति को मानता है तथा दुःखवाद का मौलिक सिद्धान्त प्रतिपादित करता है जिसका परवर्ती साहित्य पर व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है।

बौद्धों का कर्मवाद उपनिषदों और जैन साहित्य से मेल खाता है। किन्तु जहाँ जैन मतावलम्बी यह मानते हैं कि कर्म अनिवार्य है वहाँ बौद्धों के अनुसार यदि मनुष्य तृष्णा को छोड़ दे तो कर्मफल भोग से बच भी सकता है क्योंकि तृष्णा ही कर्म विपाक का एकमात्र कारण है।

*मक्खलि गोशाल का मत*

महाभारत के शान्तिपर्व में गोशाल का मत मंकि ऋषि के नाम से वर्णित किया गया है। ये आजीवक थे तथा 'आजीवक सम्प्रदाय' के संस्थापक थे। आजीवक उन्हें कहा जाता है जो कर्म को सर्वथा त्याग कर जीविका के लिए भाग्यापजीवी हो। पाणिनी ने इन्हें 'मस्करी' तथा इस मत के मानने वालों को दिष्टिवादी अथवा दैष्टिक कहा है।[२]

मक्खलि गोशाल का मुख्य उपदेश था कि मनुष्य को यदि मोक्ष पाना है तो उसे कोई भी कर्म नहीं करना चाहिये। कर्महीन होने से ही परम शान्ति मिल सकती है। गोशाल का मूलमन्त्र इस प्रकार है —

---

(१) वासुदेवशरण अग्रवाल भारत सावित्री भाग २ पृ० ४०।

(2) The third category of thinkers who are mentioned as Daishtika by Panini certainly refer to the followers of the deterministic philosophy preached by Makhali Gosala who repudiated the efficacy of Karma as a means for improving lot of humun beings

—V S Agrawala India As Known to Panini P 383

माकृत कर्माणि माकृत कार्माणि र्शा तय ।
उपसो व्यात तु मस्करी परिव्राजक ।[१]

यदि मो र मिलन वाला है तो उसके लिए हाथ पर चलाने की आवश्यकता नहीं वह शान्ति या चुपचाप बठ रहने स ही मिल जायेगा अत कम मत करो कम मत करो । स पेप म गोशाल का यही सदेश था ।

कम का इतना घोर विरोध शायद ही भारतीय दर्शन म किसी ने किया हो जितना गोशाल ने किया । इसी कारण ये पक्के नियतिवादी कहे जाते हैं । इन्होंने कहा कि न तो कम ही किसी घटना का कारण है और न ईश्वर ही अपितु समस्त घटनाएं स्वत घटित होती हैं क्योंकि वे नियति हैं । नियति ही वह शक्ति है जो समस्त जीवों और पदार्थों को नियत रखती है ।

गोशाल इतने कट्टर नियतिवाद कसे बने इसके पीछे एक बड़ी ही रोचक कथा महाभारत के शान्तिपर्व म वर्णित की गई है । वस्तुत प्रारम्भ म वे पुरुषार्थवादी थे किन्तु जितना भी कम करते तो भी फल प्राप्ति नहीं होती थी भाग्य साथ न देता था । अत म उन्होंने दृढ व्रत लिया कि इस बार अपनी पूरी शक्ति लगाकर कम करूंगा और अवश्य सफलता मेरे कदम चूमेगी । अत अपना सवस्व बेचकर उन्होंने दो हृष्ट पुष्ट बल खरीदे और उन्हें एक रस्सी से बांधकर खेत की ओर चल पड़े । रास्ते म एक ऊंट बठा हुआ था और वह एकाएक उन बलों को देखकर भड़क गया । वह उठकर भागा और दोनों बलों के बछड़े उसकी गदन म लटक गये । मंकि ऋषि विलाप करते हुए उनके पीछे पीछे भागे और उन्होंने ये शब्द कहे —

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रिय वत्सतरौमम ।
शइविदं वमेवेदं हठ नचास्ति पौरुषम ।[२]

अर्थात् जस माला के दो मनके झूलते हैं ठीक वसे ही ऊंट के गदन मे मेरे दोनों बछड़े झूल रहे हैं । हठ पूवक किया गया कम कभी सफल नहीं होता भाग्य ही अंतिम सत्य है । वस्तुत ऊंट ही वह भाग्य है जिसकी ऊबड़ खाबड़ चाल का कोई ठिकाना नहीं पता नहीं वह कब भड़क जाए । यह ऊंट सब के मार्ग घेर कर बठा हुआ है । ये दो बछड़े ज्ञान और कम हैं पर भाग्य रूपी ऊंट इन्हें कब उठा ले जाएगा यह कोई नहीं बता सकता ।

(१) भाष्य ६–१–१५४ ।
(२) महाभारत (शान्तिपर्व) १७१–१२ ।

उपरोक्त कथा प्रसंग से मक्खलि गोशाल घोर नियतिवादी (भाग्यवादी) सिद्ध होते हैं। यही नहीं वे आजीवकों के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त 'नियतिवाद' के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वे बहुत समय तक भगवान महावीर के साथ रहे किन्तु वाद में मतभेद हो जाने के कारण उनसे पृथक हो गये। भगवती सूत्र तथा आवश्यक सूत्र की चूर्णि में दोनों के पार्थक्य का विवरण उपलब्ध है। कहा जाता है कि एक दूसरे से पृथक होने पर ये दोनों सोलह वर्ष तक अपने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। इस अवधि में मक्खलि गोशाल की प्रतिष्ठा बेहद बढ़ गई और श्रावस्ती में उनके अनेक अनेक अनुयायी हो गए। उन्होंने अपने आप को तीर्थंकर भी घोषित कर दिया। विद्वानों के मतानुसार भगवान महावीर से उनका मौलिक मतभेद नियतिवाद के सम्बन्ध में ही था। जहाँ गोशाल एकांत नियतिवादी थे वहाँ महावीर अनेकान्तवाद के समर्थक थे।[१]

गोशाल की नियतिवादिता के विषय में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'आजीवकों का नियतिवादी सम्प्रदाय' शीर्षक अपने एक लेख में लिखा है 'नियति की चर्चा करते समय मक्खलि गोशाल का कथन कुछ इस प्रकार का था कि 'जिस प्रकार कोई सूत से भरी रील फेंकने पर बराबर उभरती चली जाती है और वह उसकी पूरी लंबाई तक एक ही प्रकार से बढ़ती जाती है उसी प्रकार चाहे कोई मूर्ख हो चाहे कोई पंडित ही क्यों न हो सभी को ठीक एक ही नियम का अनुसरण कर अपने दुःख का अन्त करना है' मक्खलि गोशाल के इस नियतिवाद की धारणा को उनके दक्षिणी अनुयायियों ने कुछ और भी विकसित किया।[२]

मक्खलि गोशाल के विषय में इतने तथ्यों को प्राप्त करने के पश्चात् हमारी यह निश्चित धारणा बनती है कि भारत में भी भाग्यवादी दर्शन का प्रचार प्रसार रहा है जिसके प्रवर्तक गोशाल स्वयं थे। पाणिनी ने भी जिन चिंतकों का दैष्टिक नाम से उल्लेख किया है वे निश्चित रूप से गोशाल द्वारा प्रचारित नियतिवादी ही हैं जिन्होंने मनुष्यों के भाग्य सुधारने के लिए कर्म की प्रभावोत्पादकता को निःसार ठहराया।

---

(१) डॉ० कन्हैयालाल सहल मुनि श्री हजारीमल स्मृति-ग्रन्थ (नियति का स्वरूप) पृ० ४१६।

(२) परशुराम चतुर्वेदी भारतीय साहित्य (जुलाई १९५८), पृ० २९--३०।

माकृत कर्माणि माकृत कार्माणि शान्तिर्वः ।
श्रेयसी व्याप्त तु मस्करी परिव्राजक ।[१]

यदि मोक्ष मिलने वाला है तो उसके लिए हाथ पैर चलाने की आवश्यकता नहीं वह शान्ति या चुपचाप बैठ रहने से ही मिल जायेगा अत कर्म मत करो कर्म मत करो। संक्षेप में गोशाल का यही संदेश था।

कर्म का इतना घोर विरोध शायद ही भारतीय दर्शन में किसी ने किया हो जितना गोशाल ने किया। इसी कारण ये पक्के नियतिवादी कहे जाते हैं। इन्होंने कहा कि न तो कर्म ही किसी घटना का कारण है और न ईश्वर ही अपितु समस्त घटनाएं स्वतः घटित होती हैं क्योंकि वे नियति हैं। नियति ही वह शक्ति है जो समस्त जीवों और पदार्थों को नियत रखती है।

गोशाल इतने कट्टर नियतिवादी कैसे बने इसके पीछे एक बड़ी ही रोचक कथा महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित की गई है। वस्तुतः प्रारम्भ में वे पुरुषार्थवादी थे किन्तु जितना भी कर्म करते तो भी फल प्राप्ति नहीं होती थी भाग्य साथ न देता था। अंत में उन्होंने दृढ़ व्रत लिया कि इस बार अपनी पूरी शक्ति लगाकर कर्म करूंगा और अवश्य सफलता मेरे कदम चूमेगी। अत अपना सर्वस्व बेचकर उन्होंने दो हृष्ट पुष्ट बैल खरीदे और उन्हें एक रस्सी से बांधकर खेत की ओर चल पड़े। रास्ते में एक ऊंट बैठा हुआ था और वह एकाएक उन बैलों को देखकर भड़क गया। वह उठकर भागा और दोनों बैलों के बछड़े उसकी गर्दन में लटक गये। मंकि ऋषि विलाप करते हुए उनके पीछे पीछे भागे और उन्होंने ये शब्द कहे —

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रिय वत्सतरौ मम।
शुद्धं हि दैवमेवेदं हठे नैवास्ति पौरुषम्।[२]

अर्थात् जैसे माला के दो मनके झूलते हैं ठीक वैसे ही ऊंट के गर्दन में मेरे दोनों बछड़े झूल रहे हैं। हठ पूर्वक किया गया कर्म कभी सफल नहीं होता भाग्य ही अंतिम सत्य है। वस्तुतः ऊंट ही वह भाग्य है जिसकी ऊबड़ खाबड़ चाल का कोई ठिकाना नहीं पता नहीं वह कब भड़क जाए। यह ऊंट सब के मार्ग घेर कर बैठा हुआ है। ये दो बछड़े ज्ञान और कर्म हैं पर भाग्य रूपी ऊंट इन्हें कब उठा ले जाएगा यह कोई नहीं बता सकता।

(१) भाष्य ६-१-१५४।
(२) महाभारत (शान्तिपर्व) १७७-१२।

उपरोक्त कथा प्रसंग से मक्खलि गोशाल घोर नियतिवादी (भाग्यवादी) सिद्ध होते हैं। यही नहीं वे आजीवकों के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त 'नियतिवाद' के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। वे बहुत समय तक भगवान महावीर के साथ रहे किन्तु बाद में मतभेद हो जाने के कारण उनसे पृथक हो गये। 'भगवती सूत्र' तथा 'आवश्यक सूत्र' की चूर्णि में दोनों के पार्थक्य का विवरण उपलब्ध है। कहा जाता है कि एक दूसरे से पृथक होने पर ये दोनों सोलह वर्ष तक अपने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे। इस अवधि में मक्खलि गोशाल की प्रतिष्ठा बेहद बढ़ गई और श्रावस्ती में उनके अनेक अनेक अनुयायी हो गए। उन्होंने अपने आप को तीर्थंकर भी घोषित कर दिया। विद्वानों के मतानुसार भगवान् महावीर से उनका मौलिक मतभेद नियतिवाद के सम्बन्ध में हो था। जहाँ गोशाल एकांत नियतिवादी थे वहीं महावीर अनेकान्तवाद के समर्थक थे।[१]

गोशाल की नियतिवादिता के विषय में श्री परशुराम चतुर्वेदी ने 'आजीवकों का नियतिवादी सम्प्रदाय' शीर्षक अपने एक लेख में लिखा है "नियति की चर्चा करते समय मक्खलि गोशाल का कथन कुछ इस प्रकार का था कि जिस प्रकार कोई सूत से भरी रील फेंकने पर बराबर उभरती चली जाती है और वह उसकी पूरी लम्बाई तक एक ही प्रकार से बढ़ती जाती है उसी प्रकार चाहे कोई मूर्ख हो चाहे कोई पंडित ही क्यों न हो सभी का ठीक एक ही नियम का अनुसरण कर अपने दुःख का अन्त करना है, मक्खलि गोशाल के इस नियतिवाद की धारणा को उनके दक्षिणी अनुयायियों ने कुछ और भी विकसित किया।"[२]

मक्खलि गोशाल के विषय में इतने तथ्यों का ज्ञात करने के पश्चात् हमारी यह निश्चित धारणा बनती है कि भारत में भी भाग्यवादी दर्शन का प्रचार प्रसार रहा है जिसके प्रवर्तक गोशाल स्वयं थे। पाणिनी ने भी जिन चिन्तकों का दिष्टिक नाम से उल्लेख किया है, वे निश्चित रूप से गोशाल द्वारा प्रचारित नियतिवादी ही हैं जिन्होंने मनुष्यों के भाग्य सुधारने के लिए कर्म की प्रभावोत्पादकता को निःसार ठहराया।

(१) डा० कन्हैयालाल सहल : मुनि श्री हजारीमल स्मृति-ग्रन्थ (नियति का स्वरूप) पृ० ४१६।

(२) परशुराम चतुर्वेदी : भारतीय साहित्य (जुलाई १९५८), पृ० २९–३०।

पाँच अन्य भाग्यवादी सम्प्रदायों का उल्लेख महाभारत में मिलता है जिनकी पुष्टि वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी एक लेख में की है।[१] ये सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं —

(क) सर्वसाम्य (सबको समान समझना)
(ख) अनायास (हाथ पैर न हिलाना परिश्रम न करना)
(ग) सत्यवाद (सत्य बोलना)
(घ) निर्वेद (कर्म के प्रति नितान्त उपेक्षा)
(ङ) अविरसा (किसी वस्तु प्राप्ति की इच्छा न रखना)[२]

उपरोक्त पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ अति प्राचीन काल से भाग्यवादी सम्प्रदायों का अस्तित्व रहा है।

किन्तु मानविकी पारिभाषिक कोश में डा० नगेन्द्र का कथन है भाग्यवाद एक व्यावहारिक प्रवृत्ति मात्र है न कि दार्शनिक सिद्धान्त'।[३] मक्खलि गोशाल के भाग्यवादी सम्प्रदाय और महाभारत में वर्णित उपरोक्त संदर्भ के आलोक में हमें श्री नगेन्द्र का यह मत सर्वथा भ्रामक प्रतीत होता है।

षड्दर्शन

(१) सांख्य —षड्दर्शनों में सर्व प्रथम सांख्य दर्शन है जिसके व्याख्याता कपिल मुनि ने आत्मा को निष्क्रिय माना। कपिल ईश्वरवादी नहीं थे प्रकृतिवादी थे। कपिल कहते हैं कि पुरुष की समीपता मात्र से और उसके लिए ही प्रकृति में क्रिया उत्पन्न होती है जिससे विश्व की वस्तुओं का उत्पादन एवं विनाश होता है।[४] इस सम्बन्ध में गीता का निम्नलिखित श्लोक भी उल्लेख्य है —

---

(१) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (प्राचीन भाग्यवादी दर्शन) साप्ताहिक भारत रविवार २२ मई १९६० ई०।

(२) महाभारत शां० प० १७१—२ तथा उद्यो० प० ३९—१ ७ ४४।

(३) मानविकी पारिभाषिक कोश (स० डा० नगेन्द्र) दर्शन खंड पृ० ८३।

(४) राहुल सांकृत्यायन दर्शन दिग्दर्शन पृ० ५४२।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ।[१]

सांख्य दर्शन में 'सत्कार्यवाद' का सिद्धान्त मान्य है जिसके अनुसार उत्पत्ति से पूर्व भी कार्य कारण में अवश्यमेव अव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रकार कार्य तथा कारण में वस्तुतः अभिन्नता है। कार्य की अव्यक्तावस्था का ही नाम कारण है और कारण की व्यक्तावस्था ही कार्य है। इस प्रकार कार्य कारण का भेद व्यावहारिक है परन्तु अभेद तात्विक है। इस सिद्धान्त को परिणामवाद भी कहते हैं।[२] वही में मक्खन पहले से ही है। उस ही विलो कर प्रकट कर दिया जाता है। सिकता से तेल नहीं निकाला जा सकता क्योंकि उसमें तैल ही नहीं है किन्तु तिलों से तैल निकाला जाता है क्योंकि उनमें तेल पहले ही अव्यक्त रूप में व्याप्त रहता है। इसी प्रकार तन्तु से वस्त्र तथा स्वर्ण से कुण्डल आदि के निर्माण में भी मात्र रूपान्तर होता है वस्तुतः कोई नई वस्तु नहीं बनती।

सांख्य दर्शन कार्य और कारण में समवाय सम्बन्ध मानता है जिससे सिद्ध होता है कि चाहे जिस कारण से चाहे जिस कार्य की उत्पत्ति नहीं होती।

(२) वैशेषिक —कणाद वैशेषिक मत के संस्थापक थे। ये आत्मवादी थे और अदृष्ट को मानते थे। विश्व का नियमन कौन सी शक्ति करती है यह दिखाई नहीं देता अतः कणाद ने उसे अदृष्ट की संज्ञा दी। कणाद के लिए राहुल जी लिखते हैं उन्हें कर्मफल आदि अदृष्ट देता है। यह फल देनेवाला अदृष्ट सुकृत दुष्कृत की वासना या संस्कार है। इसे ईश्वर नहीं कहा जा सकता।[३] अतः कणाद ने ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध अदृष्ट की सत्ता स्वीकार की।

(३) मीमांसा —इसके प्रवर्तक जैमिनी थे। मीमांसा में कर्म और फल की व्यवस्था अपूर्व के माध्यम से इस प्रकार प्रचलित कर दी गई है कि उसमें किसी पृथक् व्यक्ति का नियन्ता अथवा फलदाता के रूप में आवश्यकता ही नहीं रह गई। शास्त्र द्वारा विहित विधान के अनुसार जब हम विधिपूर्वक किसी कर्म का पूर्ण अनुष्ठान करते हैं तो वह कर्म स्वतः ही अवश्य

(१) श्रीमद्भगवद्गीता ५-१४।
(२) बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ ३२४।
( ) राहुल सांकृत्यायन दर्शन दिग्दर्शन पृ ५६३।

फल देगा। वेद विहित अनुष्ठित कर्म ही स्वयं फलदाता है। घट के पैदा होने के सपूर्ण साधना का जुटा और जब एक कुम्भकार उसकी उत्पत्ति के अनुकूल समस्त व्यापार करता जाता है तो फिर घड़ा स्वय ही पैदा हो जायेगा। तन्तुओं का विधि विधान के अनुसार सयोग करते-करते घट स्वय उत्पन्न हो जायेगा।[१]

वेद प्रतिपादित कर्म तीन प्रकार के माने गये हैं—(क) काम्य कर्म किसी कामना विशेष के लिए किए जाने वाले कर्म जैसे स्वर्ग की कामना के लिए यज्ञानुष्ठान। (ख) प्रतिषिद्ध कर्म अनर्थ उत्पादक निषिद्ध कर्म जैसे विषदिग्ध शस्त्र से मारे गये पशु के मांस भक्षण का निषेध। (ग) नित्य नैमित्तिक कर्म, अहेतुक कारणीय कर्म जैसे सन्ध्या वन्दनादि नित्य कर्म तथा अवसर विशेष पर किये जाने वाले श्राद्धादि नैमित्तिक कर्म। अनुष्ठान करते ही तुरन्त तो फल मिल नहीं जाता फिर फलोत्पत्ति कैसे होती है? जैसा ऊपर कहा गया है प्रत्येक कर्म में मीमांसकों के मतानुसार अपूर्व (पुण्यापुण्य) उत्पन्न करने की शक्ति रहती है —

भोगादेश फल तादृ शक्तिद्वारेण सिध्यति।
सूक्ष्मशक्त्यात्मक वा तत फलमेवोपजायते।[२]

कर्म से अपूर्व और अपूर्व से होता है फल। अत अपूर्व फल तथा कर्म के बीच की दशा का सूचक है। इसीलिए शंकराचार्य ने अपूर्व को कर्म की सूक्ष्मा उत्तरावस्था या फल की पूर्वावस्था माना है —

कर्मणो वा सूक्ष्म काचिदुत्तरावस्था
फलस्य वा पूर्वावस्थापूर्वं नामास्तीति तर्क्यत।[३]

जैमिनि यद्यपि विधिविहित यज्ञ को ही फलदाता मानते हैं तथापि ब्रह्म सूत्र के तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद के अंतिम फलाधिकरण में आचार्य बादरायण ईश्वर को कर्म फल का दाता मानते हैं। परवर्ती मीमांसकों ने भी ईश्वर को यज्ञपति के रूप में स्वीकार कर उसे ही एक प्रकार से कर्मफलदाता स्वीकार किया। प्राचीन मीमांसा अवश्य निरीश्वरवादी जान पड़ती है।[४]

---

(१) मंडन मिश्र मीमांसा दर्शन पृ० ३२०।
(२) तन्त्रवार्तिक पृ० ३९५।
(३) शांकर भाष्य ३-२-४।
(४) बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन पृ० ३९८।

(४) न्याय —गौतम ने न्याय दर्शन की स्थापना की। उनके अनुसार प्रत्येक कार्य का कारण होता है। कर्म नियामक और कर्म फल दाता के रूप में गौतम ने ईश्वर को स्वीकार किया। वे कहते हैं कि मनुष्यों के कर्मों का द्रष्टा और कर्म फल संयोग कराने वाला कोई न कोई अवश्य है। वह मनुष्य नहीं हो सकता, ईश्वर ही हो सकता है।

इस दृष्टि से देखने पर न्याय दर्शन जड़वादी दर्शन नहीं रह जाता क्योंकि वह कार्य कारण शृंखला को पूर्णतः स्वीकार करता है और उसमें भाग्यवाद का वह रूप नहीं माना जा सकता जिसमें कार्य कारण परम्परा का अभाव है तथा जो स्वेच्छाचार को लेकर प्रवृत्त होता है।

(५) योग —योग दर्शन के व्याख्याता पतंजलि थे। योग दर्शन का सूत्र है ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्।[१] अर्थात् पुण्य और पाप से ही सुख दुःख प्राप्त होते हैं। पतंजलि के अनुसार ईश्वर सृष्टि और प्रलय के अनन्तर पुरुषों के कर्मानुसार उन्हें नैतिक विकास के लिए अवसर प्रदान करता है और उस उद्देश्य-हेतु प्रकृति-पुरुष के संयोग का नियन्त्रण करता है। पुरुष कर्मों के फल अथवा विपाक का सहन करता है किन्तु ईश्वर सब प्रकार के विकारों से रहित होता है। सृष्टि और प्रलय के व्यवस्थापक रूप में योग ने ईश्वर को स्वीकार किया है।

(६) वेदान्त — इसके संस्थापक बादरायण थे जिन्होंने जीव को नित्य चेतन एवं ब्रह्म का अंश माना। वे उपनिषदों से प्रभावित थे और यह मानते थे कि जीव स्वयं-कृत कर्मों का फल भोगने में विवश है। फिर भी वे यह स्वीकार करते थे कि जीव में कर्म करने की क्षमता है। जीव को यह कृतित्व-शक्ति परमात्मा से मिली है यह श्रुति सिद्ध है। शक्ति के ब्रह्म से मिलने पर वह कार्य परायण होती है। इसलिए पाप पुण्य के विधि नियम फजूल नहीं और न जीव को बेकसूर दण्ड भोगने का बात उठ सकती है।[२] निष्कर्ष कहा जा सकता है कि षड्दर्शनों में एक दो अपवादों में अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनों में नियति की सत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया गया है।

---

(१) योगदर्शन २-१४।

(२) राहुल सांकृत्यायन दर्शन दिग्दर्शन पृ० ६७६।

आगम दर्शन —

पाचरात्र शैव और शाक्त आदि दर्शनो को आगम कहा जाता है। इनमे शैव दर्शन प्रमुख है। इस दर्शन में शिव को ही समस्त सृष्टि का नियन्ता और संहारक माना जाता है। शिव सर्वशक्तिमान हैं स्वतन्त्र स्वतन्त्र है और प्राणियों के सुख दुख का नियामक है। नियतिर्योजनामधत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले[१] के अनुसार विश्व के विशिष्ट कार्य कलापो की योजना नियति द्वारा होती है। शैवागमो का नियति पाँच कंचुक मे से एक कंचुक मात्र है वही सब कुछ नहीं है। उनके अनुसार नियति शिव के रूप में समस्त विश्व के कर्मफल की योजना करती है। शिव के शैवा ने १ रूप माने है जो—वामन्द शिव भव उद्भव वज्रदेह प्रभ धाता नम विक्रम तथा सुप्तभेद—हैं। इन्हीं रूपो को धारण कर शिव विश्व का नियमन करते हैं। शैवो की शुद्ध निक व्याख्या श्री बलदेव उपाध्याय के शब्दों में सुनिए मह्स्वर अपरिमित ज्ञान से कम से जीवो का प्रत्यक्ष करते हैं और अपरिमित प्रभाव से जीव का पालन करते है वह परमस्वतन्त्र अव्यय ज्ञान तथा एक कर्ता है। उसी की इच्छाशक्ति से जीवो को इष्ट अनिष्ट, शरीर विषय तथा इन्द्रिय की प्राप्ति हुआ करती है इसीलिए वह स्वतन्त्र कर्ता कहलाता है।[२]

शाकर वेदान्त —

वेदान्त के अनुसार कर्म व बन्धन के कारण है ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होता है।[३] गीता के अनुसार ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को भस्म कर डालती है। टीकाकारो के मतानुसार सब कर्मों से तात्पर्य कर्मपरा से है क्योंकि ज्ञान की अग्नि मे सञ्चित और क्रियमाण कर्म तो नष्ट हो जाते है किन्तु

---

(१) तन्त्रालोक आह्निक १ ।

( ) हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (स राजबली पाडेय) भाग १ खण्ड (ले० बलदेव उपाध्याय) पृ ५१

( ) (क) कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते। (महाभारत शा० ५० २४ —७)

(ख) ऋते ज्ञानान्न मुक्ति ।

प्रारब्ध कर्म नष्ट नहीं होते। प्रारब्ध कर्मों का तो भोग से ही क्षय होता है।[१]

कार्यकारण के सम्बन्ध में वेदान्त भी 'परिणामवाद' का पक्षपाती प्रतीत होता है जैसा कि आत्मकृते परिणामात् (ब्र० सू० १–४–२६) से प्रकट है।

लोकमान्य तिलक ने अपने भाष्य में कर्मयोग के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता किन्तु कर्म निष्काम भाव से किये जाने चाहिए जिससे वे बन्धनहेतु न बनें। जो सन्ध्यावन्दनादि नित्य कर्म करता है, उसका चित्त सत्त्विकमार्ग होकर विशुद्ध हो जाता है। चित्त की विशुद्धि होने पर वह आत्म साक्षात्कार के योग्य हो जाता है। उस स्थिति पर 'नियति' का उस पर कोई वश नहीं चलता। वह नित्य शुद्ध बुद्ध रूप में स्थित होकर अपने को पहचानकर ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति ब्रह्मवेत्ता बनकर ब्रह्म ही हो जाता है।

इससे स्पष्ट है कि कर्म मनुष्य को तभी तक बाँध पाते हैं जब तक मनुष्य कामना से कर्म में प्रवृत्त होता है।

*योगवासिष्ठ* —

योगवासिष्ठ में नियति और पुरुषार्थ का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं —

यथास्थित ब्रह्मतत्व सत्ता नियतिरुच्यते।
सा विनतुर्विनयत्व सा विनेयविनयता। २–१०–१।
आदिसर्गे हि नियतिर्भाववैचित्र्यमक्षयम्।
अनेनेत्थं सदा भाव्यमिति सम्पद्यते परम्। –६२–६।

अर्थात् यथार्थ रूप से स्थित जो शाश्वत ब्रह्म की सत्ता है उसी का नाम नियति है वही कार्य कारण के नियम्य और नियामक रूप में स्थित है। कारण होने पर कार्य अवश्य होता है और कार्य होने पर उसका कोई कारण अवश्य होता है। इसी नियम का नाम नियति है। वही कारण आदि की नियामकता है और वही कार्य आदि की नियम्यता भी है।

---

(१) प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षयः।

'दव नाम न किंचन (११–५–१८) और दव न विद्यते' (११–५–११) कहकर योगवासिष्ठ ने पुरुषार्थ की महिमा गाई —

यो यो यथा प्रयतते स स तत्तत्फलभाक् ।
न तु तूष्णीं स्थितेनह केनचित्प्राप्यते फलम ।

इस प्रकार ऋग्वदिक काल से योगवासिष्ठकार तक भारतीय साहित्य और दशन म नियतिवादी धारा असङ्ग और अविच्छिन्न रूप स प्रवहमान होती हुई दृष्टिगोचर होती है ।

# प्रसाद के नाटकों में 'नियति' का स्वरूप

नियति शब्द की व्युत्पत्ति उसके पर्याय उसके स्वरूप तथा उसके उद्‌भव और विकास का विवेचन करने के पश्चात् अब हम कालक्रमानुसार प्रसाद के नाटकों में नियति के स्वरूप का अध्ययन करना है।

प्रसाद ने अपने संपूर्ण साहित्यिक जीवन में चौदह नाटक पूरे किये किन्तु इन में से अग्निमित्र देव प्रकाशित नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त 'अग्निमित्र' तथा इन्द्र नामक नाटकों का वे संयोजन मात्र ही कर सके। इस प्रकार उनके समस्त प्रकाशित नाटकों की संख्या तेरह ही रह जाती है जिन्हें क्रमशः इस प्रकार रखा जा सकता है —

| | |
|---|---|
| (१) सज्जन | सन १९१०–११ |
| (२) प्रायश्चित्त | " १९१२ |
| (३) कल्याणी परिणय | १९१२ |
| (४) करुणालय | १९१३ |
| (५) राज्यश्री | १९१५ |
| (६) विशाख | १९२१ |
| (७) अजातशत्रु | १९ २ |
| (८) जनमेजय का नागयज्ञ | १९२३ |
| (९) कामना | १९२ –२४ |
| (१ ) स्कन्दगुप्त | " १९२८ |
| (११) चन्द्रगुप्त | १९२८ |
| (१२) एकघूंट | १९२९ |
| (१३) ध्रुव स्वामिनी | १९‌.३ |

उपरोक्त नाटकों में से कल्याणी परिणय को विवेचन का विषय नहीं बनाया गया है, क्योंकि 'चन्द्रगुप्त नाटक' में इसका समाहार हो जाता है। अन्य सभी नाटकों की नियति भावना का विवेचन विश्लेषण हम निम्नलिखित तीन बिन्दुओं के आधार पर करेंगे —

अतः कहा जा सकता है कि कर्मवाद के अतिरिक्त इस नाट्य रचना में प्रसाद का ध्यान दैववाद की ओर भी गया है।

चतुर्थ दृश्य में चित्रसेन जब युद्ध करते करते एकाएक अपने मित्र अर्जुन को पहचान लेता है तो युद्ध बन्द कर देता है। अर्जुन उसे बताता है कि वह युद्ध विप्लव में उसे पहचान नहीं सका था इस पर चित्रसेन की यह उक्ति द्रष्टव्य है "मित्र कुछ नहीं वह केवल सयोग था।" यहाँ सयोग का अर्थ आकस्मिकता अप्रत्याशित बात अचिन्त्य बात आदि से है। किन्तु इससे यह भी जान पड़ता है कि सयोग से अनेक घटनाएं घटित होती हैं। वसे सयोग शब्द साधारण व्यवहार का शब्द है किन्तु अप्रत्याशित घटना के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण यह भाग्य के समकक्ष प्रतीत होता है जिसमें कार्य-कारण परम्परा की अस्पष्टता की प्रतीति भी होती है।

प्रथम दृश्य में युधिष्ठिर और द्रौपदी चन्द्रमा के प्राकृतिक सौन्दर्य के विषय में वार्तालाप करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं चन्द्रमा के चारों ओर तारागण एकत्रित हो गए हैं "जिमि शुभ फल आवें सज्जन ढिग घनेरे।" —अर्थात तारागण चन्द्रमा के चारों ओर ऐसे ही एकत्रित हो गये हैं जैसे सज्जन के चारों ओर शुभ फल। द्रौपदी की इस उक्ति में भी कर्म फल के रूप में कर्मवाद की छाप दर्शनीय है।

नाटक के अन्त में विद्याधरी-गणों के द्वारा भरत-वाक्य के रूप में धर्म की जो स्तुति की गई है उसमें भी यह कहा गया है कि सज्जन अथवा धर्मानुसार आचरण करने वाले व्यक्ति की ही विजय होती है। इससे भी अच्छे कर्म करने वाले व्यक्ति को शुभ फल मिलने का सकेत स्पष्ट है।

निष्कर्ष —

सज्जन प्रसाद की प्रथम नाट्य-कृति है अतः इस नाटक में उनका ध्यान घटनाओं के सयोजन और चरित्र चित्रण तक ही सीमित रह गया है। इसी से इस नाटक में किसी दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं हो सका है। किन्तु फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि इसमें प्रसाद जी कर्म-सम्बन्धी और दैव विषय दोनों प्रकार की आन्तरिक अनुभूतियों से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं। नकुल तथा सहदेव की प्यास से उत्पन्न दशा विषय देख कर युधिष्ठिर का ध्यान तो उनके स्वभावतः दैव की ओर जाता है और सूर्य तथा चन्द्रमा के सम्बन्ध में वार्तालाप करते समय द्रौपदी का ध्यान पुरुषार्थ की ओर

आकृष्ट ही होता है। इसी प्रकार कर्ण भी इस नाटक में पुरुषार्थ की महिमा का गान कई स्थानों पर करता है। विक्रसेन ने भयाग शब्द को प्रयुक्त कर भाग्य की ओर साधारण सा संकेत किया है। किन्तु नाटक का समग्र प्रभाव कर्म की प्रधानता पर ही बल देता हुआ सा प्रतीत होता है क्योंकि कर्ण और द्रौपदी के अतिरिक्त अर्जुन का चरित्र भी पुरुषार्थवादिता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसी पुरुषार्थ के कारण वह दुर्योधन को मुक्त कराने में सफल होता है और अपनी वीरता तथा कर्तव्य भावना का प्रदर्शन करने में भी।

## प्रायश्चित्त

नियति विषयक संदर्भ

(१) दूसरी (विद्याधरी) —

सीधी इस रही सही जातिहिंसा को भी भारतवासियों के लिए ईश्वर की दया समझ। जिस दिन इसका लोप होगा उस दिन से तो इनके भाग्य से दासत्व करना लिखा ही है।

—दृश्य १ पृ० ७८ (चित्राधार),

(२) आकाशवाणी —

पहिले अपने लगाये हुए विष-वृक्ष के फल को चख फिर तू उसी लकड़ी में जलाया जायगा कि नहीं इसकी खोज शीघ्र करना।

—दृश्य १ पृ० ८२

(३) जयचन्द्र —

हाय हाय मुझसे घोर दुष्कर्म हुआ।

—दृश्य १, पृ० ८३

(४) जयचन्द्र —

मन्त्रीवर क्या सारे पाप का यही परिणाम हुआ।

—दृश्य ३ पृ० ८३

(५) मन्त्री —

महाराज के हाथों भारत-दुर्भाग्य ने सब कुछ कराया। क्या आश्चर्य है कि यह भी हो जाय।

—दृश्य ३ पृ० ८३

(६) जयचन्द्र —

मैंने प्रायश्चित करने की प्रतीक्षा की है।

अथवा नियति विषयक मान्यता के विषय में विस्तार से कुछ मिलना सम्भव भी नहीं था क्योंकि नाटककार का ध्यान इस कृति में एतिहासिक इतिवृत्त की झांकी प्रस्तुत करने के पीछे अधिक रहा है। फिर भी कई स्थानों पर भाग्य का साधारण अर्थों में प्रयोग हुआ है और कर्म के विषय में तो स्पष्ट रूप से कई बार संकेत प्रस्तुत किये गए हैं। जयचन्द ने अनेक स्थानों पर स्वयं स्वीकार किया है कि उसकी इतनी बुरी दशा उसके पापों और दुष्कर्मों का ही फल है जिनका बोझ इतना भारी है कि मंत्री के उठाए भी नहीं उठ सकता।

आकाशवाणी के द्वारा भी कर्मवाद का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है— पहले अपने विष वृक्ष के फल का चख। इस कथन में कर्म फल की अनिवार्यता की स्पष्ट प्रतीति होती है।

कर्म सिद्धान्त के परिप्रेक्ष में देखने पर इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता इसका नायक और अधम द द्वारा बार बार प्रायश्चित की भावना व्यक्त करना है। हमारे देश में अनादिकाल से यह धारणा व्याप्त रही है कि अशुभ कर्म फलों से बचने का एक उपाय यह भी है कि व्यक्ति प्रायश्चित करे इसीलिए जयचन्द—जोकि हिन्दू समाज के संस्कारों में पला हुआ पात्र है—के मन में भी रह रहकर यही विचार उठता है कि उसने देश के प्रति जो गद्दारी की है वह एक जघन्य अपराध है जिसके बुरे परिणाम से वह बच नहीं सकता। उसके अवचेतन मन में यह विचार भी घर कर गया है कि पतित पावनी गंगा के अतिरिक्त इस पाप से उसे कोई भी मुक्ति नहीं दिला सकता और इसीलिए वह अपने समस्त पापों को स्वीकार करता हुआ पतितपावनी गंगा का नामोच्चारण करता है तथा उसमें कूद कर अपने प्राण त्याग देता है। निष्कर्षतः हम नाटककार को यहां कर्मवाद से प्रभावित हुआ मानते हैं।

एक अन्य बात की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। इतिहास में वर्णित है कि जयचन्द ११९४ ई० में यमुना के किनारे फिरोजाबाद के पास लड़ाई में मुहम्मद गोरी से परास्त किये जाने पर हाथी से गिर कर मरा था[१] फिर प्रसाद जी ने उसे इस प्रकार अपने दुष्कर्मों के विषय में घुट घुट कर पश्चाताप करते हुए और गंगा में डूबकर प्रायश्चित करते हुए क्यों चित्रित किया है? हमारी दृष्टि में इसके पीछे अन्य कारणों के साथ साथ उन पर कर्म सिद्धान्त का प्रभाव भी एक कारण है।

---

(१) देखिए वही पृ० १५६।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर हम प्रायश्चित को कर्मवादी प्रभाव से युक्त नाटक कह सकते हैं। जहां सज्जन में प्रसाद जी द्वारा प्रकारान्तर से कर्मवादिता अभिव्यजित हुई है वहाँ प्रायश्चित में वह स्पष्ट रूप से मुखरित हो उठी है।

## करुणालय

नियति विषयक सन्दर्भ

(१) हरिश्चन्द्र —हे समुद्र के देव, देव आकाश के,
ना त हूजिए क्षमा कीजिए दीन को।

दृश्य १, पृ० १५।

(२) नेपथ्य से —चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है
खडे मत रहो कर्म मार्ग विस्तीर्ण है।

दृश्य १, पृ० १६।

(३) रोहित —देव आप यदि हैं प्रसन्न तो भाग्य है
प्रभो सदा आदेश आपका ध्यान से
पालन करता रहे दास वर दीजिये
एक कर्म पथ में न कभी यह भीत हो

दृश्य २ पृ० २०।

( ) वसिष्ठ — फिर क्या तुम को यह सब स्वीकार है ?'

शुन शेफ — जो कुछ होगा भाग्य और निज कर्म में।

दृश्य ४, पृ० २६।

(५) शुन शेफ —हे हे करुणा सिन्धु नियन्ता विश्व के
हे प्रतिपालक तृण विरुध के सर्प के
हाय प्रभो क्या हम इस तेरी सृष्टि के
नहीं, दिखाता जो मुझ पर करुणा नहीं।

दृश्य ५ पृ० ३१।

(६) सुव्रता —रे रे दुष्ट बना है ऋत्विक रूप में
निरावधिक रे नीचे अरे चाण्डाल तू
भूल गया दुष्कर्म सदृश उस बात को।

दृश्य ५ पृ० ३४।

(७) वसिष्ठ —धन्य सुव्रते साधु सुशीले धन्य तू
पाया पति सुत फिर अपने सौभाग्य से।

दृश्य ८ प १३७।

(८) विश्वामित्र —जगनियन्ता का यह सच्चा राज्य है
सब का ही वह पिता न देता दुख है।

दृश्य ८ प ७०।

(९) विश्वामित्र — वह प्रकाशमय देव न देता दुख है
अस्तु [सभा तुम शक्तिहीन हो गये
सम स्वर से सब करो स्तवन उस देव का
जो परिपालक है इस पूरे विश्व का।

दृश्य ५ प ७–३८।

(१०) विश्वामित्र —
जय जय विश्व के आधार।
अगम महिमा सिन्धु सी है कौन पावे पार।

दृश्य ५ प ८

समीक्षण

नाटक के आरम्भ में ही जब राजा हरिश्चन्द्र सरयू नदी के किनारे नौका विहार कर रहे होते हैं तो नेपथ्य से देववाणी होती है मिथ्या भाषी यह राजा पाखण्ड है। इससे राजा को अपना वह वचन याद आता है जो उसने वरुण को दिया था।[१] अपने पुत्र की बलि देने का वचन याद आते ही राजा वरुण को प्रसन्न करने के लिए करुण स्वर में गा उठता है —

(१) ऋग्वेद १ २४ ३ ऐतरेय ब्राह्मण ७ ३ नीतिमंजरी पृ २० २५ आदि में विस्तार से यह कथा वर्णित है। हम संक्षेप में इसे यहाँ इस प्रकार रख सकते हैं —

इक्ष्वाकुवंश के राजा हरिश्चन्द्र पुत्रशोक से व्याकुल होकर नारद के कहने पर वरुण से पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। वरुण उन्हें इस शर्त पर पुत्र देते हैं कि वह बाद में उस बलि के रूप में वरुण को समर्पित कर देगा। राजा वरुण को वचन देता है। पुत्र होगा तो आपको ही समर्पित कर दूंगा। (यहाँ इसी वचन की चर्चा प्रसाद जी ने की है।)

—पूरी कथा के लिए देखिए — ज्ञान की गरिमा (बलदेव उपाध्याय) १ द्वानी सोन का प्यास।

हे समुद्र के देव देव आवास के
शान्त हूजिए क्षमा कीजिए दीन को।

यहाँ प्रसाद जी ने जिन विशेषणों से वरुण को अलंकृत किया है वे वही विशेषण हैं जिनका प्रयोग वरुण सम्बन्धी ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलता है। वरुण को ऋग्वेद में ऋत का अधिष्ठाता देव माना गया है और समस्त प्राणियों के कर्मों का नियामक भी। और यहाँ भी राजा ने वरुण सम्बन्धी इस उक्ति में उसे उसी रूप में वर्णित किया है। अतः प्रसाद जी पर नाटक के प्रारम्भ में ही ऋतवादी मान्यता की छाप दीख पड़ती है।

द्वितीय दृश्य में रोहित कानन में बैठा हुआ विचार मन्थन में व्यस्त है। उसे वरुण पर क्रोध आ रहा है कि उसने उसके पिता से ऐसा क्रूर वचन क्यों लिया। अतः वह इन्द्र की स्तुति करता है। तभी देववाणी सुन पड़ती है —

चलना सदा चलना ही तुमको श्रेय है
खड़े मत रहो कर्म मार्ग विस्तीर्ण है।

इन पंक्तियों में वैदिक चरैवेति गान की प्रतिध्वनि स्पष्ट है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र ने हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित को सदा चलते रहने की शिक्षा दी है और यहाँ भी हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित द्वारा इन्द्र की प्रार्थना करने पर ही उपरोक्त पंक्तियाँ देववाणी के रूप में सुनाई पड़ती हैं। अतः दोनों की तुलना से ऋग्वेद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उपरोक्त उक्ति का चरैवेति-गान से भाव सामंजस्य भी देखिए —

चरैवेति चरैवेति

नानाश्रान्ताय श्री रस्ति इति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरत सखा।
चरैवेति चरैवेति

हे रोहित सुनते हैं कि श्रम से जो नहीं थका ऐसे पुरुष को श्री मिलती है। बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है जो बराबर चलता रहे। इसलिए चलते रहो चलते रहो

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्य मानस्य चराति चरतो भग।
चरैवेति चरैवेति

बैठे हुए का भाग्य बैठा रहता है खड़े होने वाले का भाग्य खड़ा हो जाता है पड़े रहने वाले का भाग्य सोता रहता है और उठकर चलनेवाले का भाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'करुणालय' में रोहित का उपरोक्त कथन और वैदिक चरवेति गान दोनों में कोई भी अन्तर प्रतीत नहीं होता। प्रसाद ने मानो अक्षरशः इसी का अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया है। इस चरवेति गान की आत्मा यही है कि नित्य चलते रहो। जैसे ठहरा हुआ पानी सड़ जाता है और बहते पानी में जीवन रहता है उसी प्रकार कर्म शून्य व्यक्ति भी सड़े हुए पानी के समान हैं और कर्मशील व्यक्ति में जीवन संचरित होता रहता है। गतिशील जन जिस प्रकार वायु और सूर्य के प्राण भंडार से जीवन अपनाता रहता है ठीक उसी प्रकार कर्मरत व्यक्ति भी जीवन शक्ति एकत्रित करता रहता है। पड़ाव डालने का नाम जिन्दगी नहीं है। जीवन पथ पर थक कर सो जाना या आलस्य का दास हो जाना तो मूर्खों के समान है। अतः मानव को अपने मार्ग में सदैव बढ़ते रहना चाहिए। ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य और चन्द्रमा सदैव आकाश को पार करते हुए अपरिमित लोकों का परिभ्रमण करते रहते हैं और फिर भी कभी थकते नहीं। नित्य प्रातः काल सूर्य आकर हममें से प्रत्येक के द्वार पर यही अलख जगाता है मेरे श्रम को देखो मैं कभी चलता हुआ थकता नहीं।[१] इस आलोक में रोहित के उपरोक्त कथन की विवेचना से निश्चितरूपेण कहा जा सकता है कि इस नाटक में प्रसाद जी ने जहाँ पौराणिक कथा का आश्रय लिया है वहीं वैदिक ऋतवाद और भारतीय कर्मवाद से भी व्यापक रूप से प्रभावित हुए हैं।

जब रोहित नेपथ्य से देववाणी द्वारा कर्म मार्ग की विस्तीर्णता का उपरोक्त घोष सुनता है तो इन्द्र से करबद्ध होकर कहता है कि हे देव मेरे लिए आपकी प्रसन्नता ही मानो भाग्य है। कृपा कर मुझे केवल आशीर्वचन दीजिए कि मैं सदैव आपके आदेश का पालन ध्यान से करता रहूँ और इस दास को यह भी वरदान दीजिए— 'रुके कर्म-पथ में न कभी यह भीत हो।

यहाँ देव शब्द इन्द्र और 'भाग्य' उनकी प्रसन्नता के पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो कि वैदिक चरवेति गान की ओर पुनः हमारा ध्यान आकृष्ट कर देता है। रुके कर्म पथ में न कभी में भी सदैव चलते रहने का भाव है और इसमें भी चरवेति गान की स्पष्ट ध्वनि सुनी जा सकती है। कर्मवाद के प्रतिपादन में भी यह पंक्ति अत्यन्त सार्थक है। नेपथ्य के कथन

(१) वासुदेव शरण अग्रवाल चरवेति-गान, ना० प्र० प्र० वर्ष ४८ अंक १–४ पृ० ५–६।

में जहाँ कर्ममार्ग को अत्यन्त विस्तीर्ण बताया गया है वहीं रोहित का यह कथन भी कर्म के प्रति अनुपम आस्था का प्रकटीकरण करता है। कर्म के सम्बन्ध में हमारे दर्शन में विस्तार से विवेचन मिलता है। मनुष्य की कर्म शक्ति को ही हमारे यहाँ उसका मेरुदण्ड माना गया है और इस शक्ति की नींव पर ही मानव जीवन का प्रसाद खड़ा है। डु कृ ञ् करणे या करना धातु का मेरुदण्ड ही शक्ल या सकना धातु है। शक्ल धातु के जिन सकारों का हमारे जीवन में पारायण हो पाता है वे ही हमारी गति के स्तम्भ हैं। जीवन के शान्त मुहूर्तों में जब हम सोचते हैं कृतो स्मर कृतो स्मर —अर्थात् अपने संकल्प का स्मरण करो और अपने से उनका मिलान करो तो यही निष्कर्ष निकलता है कि सकना ही करना है। हमारे इस संकल्प की शक्ति धातु में अवतीर्ण होकर हम कर्म की ओर प्रेरित करता है। शक्ति और कर्म हीन जीवन के संकल्प तो कोरे कागज की भांति है।[१]

पंचम दृश्य के पूर्वार्ध में हम पाठक शुनःशेफ को यूप में बंधा हुआ पाता है। जब अजीगर्त शस्त्र उठाकर उसका वध करने लगता है तो शुनःशेफ 'हे हे करुणा सिंधु नियन्ता विश्व के' कह कर विश्व का नियमन करने वाली शक्ति का स्तुतिगान कहता है। यहाँ वरुण (ऋत के देवता) को विश्व नियन्ता कह कर सम्बोधित किया गया है यही पर ज्योति पथ स्वामी शब्द भी प्राय प्रयुक्त हुआ है जो कि वैदिक साहित्य में वरुण के नामों में से ही एक है। इस प्रकार प्रस्तुत उक्ति में भी ऋत सम्बन्धी मान्यता का प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है।

इसी दृश्य में सुव्रता और वशिष्ठ ने भी भाग्य का साधारण अर्थों में 'दुर्दैव और सौभाग्य' कह कर प्रयोग किया है।

अन्त में विश्वामित्र भी अपनी गन्धर्व विवाहिता पत्नी सुव्रता और शुनःशेफ को पाकर जगन्नियन्ता ईश्वर को साधुवाद देते हैं। भरत वाक्य के रूप में जो सहगान प्रस्तुत किया गया है उससे भी यह ध्वनित होता है कि इस विश्व के पीछे एक नियामिका शक्ति है जिसका सभी पात्र अन्त में स्तवन करते हैं।

### निष्कर्ष

इस नाटक पर प्रसाद जी के वैदिक अध्ययन की छाप स्पष्ट है। कथानक भी वैदिक है और विचारधारा भी वैदिक ऋतवाद से प्रचुरमात्रा में प्रभावित

(१) वही पृ० २५–२६।

है। प्रसाद के प्रारम्भिक दोनों नाटकों में जहाँ घटना प्रवाह में दर्शन पक्ष गौण हो गया है वहाँ इसमें घटना के संयोजन के साथ साथ स्पष्ट रूप से नियति सम्बन्धी ऋतवादी मान्यता का विवेचन भी हुआ है। नियति की इतनी साफ तस्वीर प्रकट करने वाला प्रसाद का यह पहला ही नाटक है। दर्शन पक्ष का इतना उभार सज्जन और प्रायश्चित्त में नहीं मिलता। प्रारंभ से अन्त तक नाटककार ने इन्द्र और वरुण की स्तुति मुक्तकंठ से पात्रों के माध्यम द्वारा की है। दोनों ही देवता वैदिक ऋत से सम्बन्धित हैं। वरुण तो ऋत के अधिष्ठाता ही मान गए हैं। वेद में उन्हें ऋतवरुण के नाम से भी वर्णित किया गया है। उन्हीं के नियमों का प्रसार प्रकृति के सब कार्यों में दर्शाया गया है। दिन और रात के क्रम में ऋतुओं के परिवर्तन में नदियों के चढ़ाव उतार में समुद्र के ज्वार भाटे में तारों की चमक में तथा भौतिक तथा नैतिक समस्त सांसारिक नियमों में उन्हीं की सत्ता मानी गई है। जब यमी यम को अपने निकट पति रूप में वरण करती हुई पुकारती है तो यम वरुण का हवाला देता है और कहता है यमो वरुण के चर अपलक प्राणियों के कार्यों को देखते रहते हैं।[१] इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की यह पंक्ति भी दर्शनीय है —

ऋतेन मित्रा वरुणावृता वृधावृतस्पृशा क्रतुं बृहन्तमाशाथे।[२]

अर्थात् हे मित्र और वरुण ऋत को बढ़ाने वाले तथा ऋत को स्पर्श करने वाले मानववाले (तुम दोनों ने) ऋत के द्वारा बृहत् क्रतु (प्रज्ञा) को पाया।

इस प्रकार करुणालय में जगह जगह वरुण और इन्द्र की प्रशस्तियाँ वरद्विधान का अनुवाद तथा तप की महत्तापरक उक्तियाँ पढ़कर हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि प्रसाद जी अपनी नियति भावना के सन्दर्भ में ऋतवाद से पूर्णतः प्रभावित हुए हैं।

वरुण विषय विवेचन का सहारा लेकर जहाँ ऋतवाद करुणालय में आ गया है वहीं कर्म की महत्ता पर भी इसमें काफी कुछ कहा गया है। रोहित अपने इष्ट देव से यही वरदान चाहता है कि वह कभी अपने कर्म पथ में न रहा। कर्म मार्ग का अत्यन्त विस्तीर्ण भी कहा गया है। वस्तुतः यह भी इस नाटक पर वरुण की छाया का ही उदाहरण है। वरुण ऋत के देवता तो है ही प्रत्येक प्राणी के कर्मानुसार उसे शुभाशुभ फल देना भी उन्हीं के अधीन है। वे इस कार्य में किसी के साथ कोई पक्षपात नहीं करते न ही

(१) ऋग्वेद —१०।

(२) ऋग्वेद १—२—८।

कोई उत्तम कर्म हो सकता है। कोई भी कार्य कितना भी छिपा कर किया जाय वह वरुण की दृष्टि से ओझल नहीं हो सकता। इस ब्रह्माण्ड के संचालन तथा नियमन का सूत्र उन्हीं के हाथ में है।[१] इस प्रकार कर्मवाद भी नाटक का प्रतिपाद्य बन कर प्रस्तुत हुआ है।

ग्रन्थ के सवाद में विश्व नियन्ता को मानव कल्याणमय बताया गया है। विश्वामित्र कहते हैं 'सबका ही वह पिता न देता दुःख है' अथवा 'वह प्रकाममय देव न देता दुःख है।' इससे ज्ञात होता है कि प्रसाद समस्त नियम समष्टि को मानव कल्याणमयी मानकर चले हैं। रोहित जैसे पात्रों को भले ही वह क्रूर दिखाई देता हो पर यह दुःख के आधिक्यवश उद्भूत भ्रम ही कहा जाएगा। वास्तव में गहरी दृष्टि डालने पर नियति सृष्टि मानव के कल्याण का उद्देश्य ही रखती हुई दृष्टिगोचर होगी यही प्रसाद का मत जान पड़ता है। डा० हरदेव बाहरी के अनुसार भी मानवता के कल्याण का स्वर भी प्रधान रूप से इसमें (करुणालय में) विद्यमान है। रूपक में विश्व कल्याण की भावना व्याप्त है।[२]

प्रसाद के मन में वैदिक बलि और हिंसात्मक भावना की प्रतिक्रिया स्वरूप बुद्ध के करुणावाद की छाया भी इस कृति से परिलक्षित होती है जिसे लम्बपन से पाला पोसा उसी पुत्रवत् शुनःशेफ का वध करने को प्रजागत तत्पर हो जाता है विश्वामित्र पत्नी से वियुक्त हो जाते हैं शुनःशेफ और रोहित पर भी दुःख के घटाटोप कम नहीं उमड़ते इन सब की प्रभावान्विति करुणा जनक ही होती है। यही नहीं नाटक का शीर्षक[३] भी 'करुणावाद' की ओर ही संकेत करता है। यह दुःख वाद अथवा करुणावाद बौद्ध धर्म की अहिंसा से प्रभावित है क्योंकि इस कृति पर बौद्ध धर्म की अहिंसा का

(१) वासुदेव शरण अग्रवाल ज्ञान की गरिमा पृ० ५८।

(२) डा० हरदेव बाहरी प्रसाद साहित्य कोश पृ० (७४)।

(३) वरुण को करुणालय का नाम देने के पीछे सम्भवतः प्रसाद जी इस वैदिक मान्यता से भी प्रभावित दिखाई देते हैं कि हृदय से स्तवन करने पर वरुण जैसा क्रूर देव भी द्रवीभूत हो जाता है —
प्रायश्चित करने वाले पर वरुण दया करते हैं। वे पाप को मानो रस्सी से बाँधते और फिर मानो ढीला कर देते हैं। जो अनजान उनके व्रतों को तोड़ते हैं उन पर भी वे समय पड़ने पर दया करते हैं।
—वैदिक देवशास्त्र (अनु० डा० सूर्यकान्त) पृ० ५४।

पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है।[१] आगे राज्यश्री की चर्चा करते हुए हम देखेंगे कि प्रसाद जी की यह दुःखवादिता भी वास्तव में उनके वैदिक ऋत सम्बन्धी धारणा का ही विकसित स्वरूप है।

इस प्रकार प्रसाद की नियति भावना के सन्दर्भ में करुणालय एक ऐतिहासिक स्मारक है। इसमें ऋतवाद कर्मवाद मानव कल्याण भाग्य सम्बन्धी कतिपय साधारण सन्दर्भ तथा दुःखवाद सभी का सुन्दर उद्घाटन उनकी लेखनी ने किया है। किन्तु नाटक की मूल आत्मा वैदिक ऋतवादी ही है। ऋतवाद को समझे बिना सम्भवतः कोई पाठक इस नाटक को समझने में भी समर्थ न होगा। अतः करुणालय वह नींव का पत्थर है जिस पर प्रसाद की नियति रूपी सुन्दर और रहस्यमयी अट्टालिका खड़ी है।

## राज्यश्री

नियति विषयक सन्दर्भ

(१) सुरमा —विश्वास करो मैं आजीवन किसी राजा की विलास मालिका बनाती रहूँ—ऐसा मेरा अदृष्ट कहे तो भी मैं मान लेने में असमर्थ हूँ।

—अंक १ पृ० १—२

(२) शान्तिदेव —

उतावली न हो सुरमा परीक्षा देने जा रहा हूँ साथ ही भाग्य की परीक्षा भी लूँगा। महारानी राज्यश्री एक दिन भिक्षुओं को दान देंगी मैं भी देखूँगा कि भाग्य मुझे किस ओर खींचता है। (वही पृ० २)

(३) देवगुप्त —

तो इससे क्या। सब अकेले ही तो संसार पथ में निकलते हैं किसी का मिल जाना यह तो उसके सौभाग्य की बात है। देखो मुझे यदि तुम न मिलती तो कौन आश्रय देता।

—वही पृ ३

(४) सुरमा —

हे भगवान इतना बड़ा सौभाग्य ? नहीं यह मेरे अदृष्ट का उपहास है।

—अंक १ दृश्य ६ पृ० १७।

(१) डा० हरदेव बाहरी प्रसाद साहित्य कोश पृ० ७४।

(५) शान्तिदेव —

मैं संसार से अलग किया गया था—निर्मलिन। पिता ने मुझे भिक्षु संघ में समर्पण किया था—क्या इसलिये कि मैं धार्मिक जीवन व्यतीत करूँ? मेरे लिए उस हृदय में दया या सहानुभूति न थी। जब हृदय कानन की आशा लता बलवती हुई तो मैं देखता हूं कि कर्मक्षेत्र में मेरे लिए कुछ अवशिष्ट नहीं तो मैं क्या करूँ? लौट जाऊँ संघ में? नहीं संघ मेरे लिए नहीं। अब यहीं कुटी में रहूंगा। तो क्या मैं तपस्वी होऊंगा? नहीं अच्छा जो नियति कराये। ओह कैसी काली रात है?

—अंक २ दृश्य १ पृ० ३३।

(६) सुरमा —

कितनी मादकता इस प्रशंसा में है। प्रियतम मुझे अपना स्वरूप विस्मृत होता जा रहा है। मेरे यह सौभाग्य

—अंक २ दृश्य ६ पृ० ३५।

(७) देवगुप्त —

सुरमा तुम कितनी मधुर हो—मेरे जीवन की ध्रुवतारिका।

नेपथ्य से —

यह तुम्हारे दुर्भाग्य में मन्दग्रह की प्रभा है।

—वही पृ० ३६।

(८) नरदत्त —

कौन न कहेगा कि महत्वशाली व्यक्तियों के सौभाग्य अभिनय में धूर्तता का बहुत हाथ होता है।

—अंक २ दृ० ७ पृ० ३६।

(९) विकटघोष —(सुरमा से अलग)

राज्यधन-सुरमा तुम्हारे भाग्याकाश का धूमकेतु और मेरे लिए तो सभी दाव हैं।

—अंक ३ दृश्य १ पृ० ४६।

(१०) मधुकर —

राज्यश्री भी कहां इधर उधर चली गई होगी। सुरमा का दुर्भाग्य

—वही पृ० ४७।

कर्मक्षेत्र में जुटी रहती है जिससे इस नाटक में कर्मवाद की उपस्थिति का भी द्योतन होता है।

नाटक पर बौद्ध धर्म तथा दुःखवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। राज्यश्री का जीवन दुःख और वेदना की गाथा है। पति को खोकर देवगुप्त के बन्दी गृह में अपमानित होकर वह दारुण दुःखों को सहती है। सखी से कहती है सखी औषधि न देकर तू विष देती तो कितना उपकार करती। इसी प्रकार दिवाकर मित्र भी दुःखों की करुण गाथा सुनाता है दुखों को छोड़कर और कोई न मुझसे मिला मेरा चिर सहचर प्राय मुझे आज्ञा दीजिए। स्त्रियों का पवित्र कर्तव्य पालन करती हुई इस क्षण भंगुर संसार से विदा लूं। निरय की ज्वाला से यह चिता की ज्वाला प्राण बचावे। अपने भाई हर्षवर्धन से भी वह कहती है भाई दुःखमय मानव जीवन है।

राज्यश्री के अलावा अन्य पात्रों के कथनों में भी दुःखवाद की स्पष्ट छाया है। दिवाकर मित्र कहता है 'प्राणी दुःखों में भगवान के समीप होता है।' अन्त में समवेत स्वरों में गाया गया गीत दुःखवाद की सुन्दर मीमांसा प्रस्तुत करता है —

करुणा कादम्बिनी बरसे—

दुःख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।

राज्यश्री का मन दुःखवाद बौद्धों से अत्यन्त प्रभावित है। राज्यश्री स्वयं काषाय धारण करती है। वह सभी को क्षमा करती जाती है जो कि बौद्धों का ही उपदेश है। यही नहीं इस नाटक में बौद्ध भिक्षु सुएनच्वांग भी उपस्थित हो है। प्रो० रामकृष्ण शिलीमुख और डा० नगेन्द्र प्रभृति विद्वानों ने भी प्रसाद जी को दुःखवाद से और विशेषतः बौद्धों के दुःखवाद से प्रभावित माना है।[१]

---

(१) (क) प्रसाद ने मालूम होता है भारतीय इतिहास के बौद्ध काल और बौद्ध दर्शन शास्त्र का कुछ अध्ययन किया है जिसका प्रभाव उन पर पड़ा है। उनके नाटकों में प्राय एक न एक बौद्ध पात्र रहता है—गौतम प्रख्यात कीर्ति और सुएनच्वांग

—प्रो० शिलीमुख प्रसाद की नाट्य कला पृ० ६७

(ख) *उनके (प्रसाद के) नाटकों में बौद्ध और आर्य दर्शन का संघर्ष* और समन्वय वास्तव में दुःखवाद और आनन्द मार्ग का ही संघर्ष और समन्वय है

—डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० १२

उपरोक्त दु खमयी अनुभूति से अनुप्राणित होकर ही सभवत राज्यश्री दुख से कह उठती है आह जितनी साँस चलनी हैं वे तो चलकर ही रुकेंगी' –अर्थात् निश्चित समय से पूर्व अपनी जीवन-लीला समाप्त करने में भी मानव स्वतन्त्र नहीं है। गहराई से विचार करने पर ऐसा लगता है मानो प्रसाद जी यहाँ मृत्यु की घड़ी को भी निश्चित मानते हैं। उस पूर्व निश्चित समय पर ही मृत्यु हो सकती है पहले नहीं। दूसरे शब्दों में जीवन और मृत्यु के सम्मुख मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति पराजित हो जाती है। ईश्वर अथवा नियति के हाथों मनुष्य जैसे यन्त्र हो और उसे चलाना या बन्द करना भी जैसे उसी के वश में हो। राज्यश्री की उपरोक्त उक्ति गीताकार की इन प्रसिद्ध पंक्तियों का स्मरण करा देती है —

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।

–ईश्वर सब प्राणियों के हृदय प्रदेश में स्थित रहता है और सब को अपनी माया से यन्त्रवत् घुमाता है। कर्मनिष्ठ तथा दृढ़ सकल्पों वाली राज्यश्री की ऐसी उक्ति अत्यन्त महत्व पूर्ण प्रतीत होती है।

निष्कर्ष —

प्रसाद की राज्यश्री उनकी अत्यन्त महत्वपूर्ण नाट्य रचना है जिसमें भाग्यवाद कर्मवाद और बौद्ध दु खवाद का सुन्दर चित्रण हुआ है।

भाग्यवादी के रूप में शान्तिभिक्षु का चरित्र चित्रण बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है। उसे भाग्य का भरोसा है और उसे यह भी देखना है कि भाग्य उसे किस ओर खींचता है' नियति को भाग्य का पर्याय मानकर वह कह उठता है अच्छा जो नियति करावे। सुरमा को भाग्याश्रित नहीं कहा जा सकता क्या केवल एक आध स्थानों पर ही सामान्य रूप से उसने सौभाग्य शब्द को प्रयुक्त किया है। देवगुप्त नरदत्त मधुकर कमला और सुएनच्वांग को भी भाग्य चर्चा करते सुना जा सकता है। इन पात्रों को भाग्य पर पूरा-पूरा विश्वास है।[१]

किन्तु राज्यश्री और सुरमा के चरित्रों में कर्मवादी भावनाएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। सुरमा की यह उक्ति कि अदृष्ट को चाहे तो एसा

(१) राज्यश्री में शान्तिदेव देवगुप्त मधुकर और कमला भाग्य दैव और दुर्दैव के आगे नतमस्तक हैं। (डा० हरदेव बाहरी प्रसाद-साहित्य कोश पृ० २११)

मानने को तयार नहा कि वह किसी राजा की विलास मन्दिरा बनानी रहे हम योगवासिष्ठकार की इन पंक्तियों की याद दिला देना है —

प्राक्तन पौरुष यत्न वर्जयित्वेतरा गति
सवदु ख क्षय प्राप्तौ न काचिदुपपद्यते ।

राज्यश्री का व्यक्तित्व भी समग्र रूप से इस पर पुरुषार्थ और कर्म की महत्ता की ही छाप छोड़ जाता है क्योंकि करुणा प्रधान होते हुए भी उनके चरित्र को प्रसाद ने निर्भीकता साहस महत्त्वाकांक्षा पुरुषार्थता आत्मविश्वास प्रादि गुणों से रंग दिया है ।

जसा कि हम पहले देख चुके हैं राज्यश्री के घटना चक्र और पात्रों पर दु खवाद का व्यापक प्रभाव है । यह दु खवाद भी मूलत ऋतवादी प्रभाव से ही ओतप्रोत है क्योंकि वैदिक विवेकवाद अथवा ऋतवाद की धारा ही आगे चलकर बौद्धों के दु खवाद के रूप में परिणत हुई । स्वयं प्रसाद ने इस विषय पर टिप्पणी की है —

वरुण न्यायपति राजा और विवेक पक्ष के प्रारम्भ थे । महावीर इन्द्र आत्मवाद और आनंद के प्रचारक थे सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विवेक के तर्क ने जिस बुद्धिवाद का विकास किया वह दार्शनिकों की उस विचारधारा को अभिव्यक्ति कर सका जिसमें संसार दु खमय माना गया और दु ख से छूटना ही परम पुरुषार्थ समझा गया । दु ख निवृत्ति दु खवाद का ही परिणाम है ।[2]

प्रसाद के उक्त विवेचन के आधार पर, जिसमें दु खवाद को वे विवेकवाद का विकसित रूप मानते हैं हम विवेकवाद (ऋतवाद) कर्मवाद तथा दु ख वाद का परस्पर सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं । यह हम पहले ही देख चुके हैं कि कर्मवाद भी ऋतवाद का ही स्वाभाविक विकसित रूप है ।

इस आलोक में देखने पर राज्यश्री नाटक पर भी वैदिक ऋत की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है यद्यपि करुणालय की भांति इसमें स्पष्ट रूप से उसका प्रतिपादन नहीं हो सका है । इसका कारण यह है कि करुणालय का कथानक जहाँ वेदों और पुराणों से सम्बंधित है वहाँ राज्यश्री में प्रसाद ऐतिहासिक कथावृत्त की ओर उन्मुख हो गए हैं ।

उपरोक्त विवेचना को आधार लेकर हम राज्यश्री को कर्मप्रधान नाट्य रचना ही मानते हैं जिसका आदि स्रोत वैदिक ऋतवाद है । हालांकि

(१) योगवासिष्ठ ६ १४ ।
(२) जयशंकर प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध पृ २५ ३७

शान्तिदेव जैसा पात्र भाग्यवादी की श्रेणी में आ जाता है किन्तु वह भी अपने कर्म पथ से तो दूर भागता हुआ नजर नहीं आता।

## विशाख

नियति-विषयक संदर्भ —

(१) विशाख —

यौवन सुख लिए आता है—यह एक भारी भ्रम है। आशामय भावी सुखों के लिए इन कठोर कर्मों का संकलन ही कहना होगा। उन्नति के लिए मैं भी पहली दौड़ लगाने चला हूं। देखूं क्या अदृष्ट में है। थोड़ा विश्राम कर लूं फिर चलूंगा।

—अंक १, दृश्य १ पृ० १२।

(२) विशाख —

ऐसा सुन्दर रूप और वेश ऐसा मलिन विधाता की लीला

—वही पृ० १३।

(३) सुश्रवा —

हा दुर्दैव यह हमारे पितृ पितामहों की भूमि थी उसी पर पतन में यह कदर्थना।

—वही पृ० १६।

(४) साधु —

यह सत्य यही स्वयं पुण्य धाम है।
सत्कर्म कर्मयोग यही विश्व-कोष है।

—अंक १ दृश्य ४ पृ० ३१।

(५) प्रमानन्द —

जब तक सुख भोग कर चित्त उससे नहीं उपराम होता मनुष्य पूर्ण वैराग्य नहीं पाता है। शुभ कर्म योग के व्यावहारिक रूप से ही उसका अनुकरण करना चाहिये।

—वही पृ० ३६।

(६) प्रमानन्द —

सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं इसलिए सत्कर्म कर्मयोग का आदर्श बनाना आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करता है।

—वही पृ० ५७।

(७) प्रमानन्द —

जब तक गुरु बुद्धि का उदय नहीं तब तक स्वार्थ प्रेरित होकर भी स्वधर्म करणीय है। तुम्हारा उद्देश्य उत्तम होना चाहिए। जो कर्तव्य है उसे निर्भय होकर करो।

—वही पृ० ३७।

(८) चन्द्रलेखा —

सुनो तो कहाँ जा रहे हो ?

विशाख —

जहाँ भाग्य ले जाय।

—अंक २ दृ० १ पृ० ४३।

(९) महारानी —

क्या इसी तरह राज्य रहेगा ? क्या अन्याय का घड़ा नहीं फूटेगा ? क्या आपको इसका प्रतिफल नहीं भोगना पड़ेगा ?

अंक ३ दृश्य १ पृ० ७२।

(१०) प्रमानन्द —

तुम अपने सज्जनता के हृदय से इन्हें क्षमा कर दो। इस बालक को ले जा कर प्रजा के अनुकूल राजा बनाने की शिक्षा दो। तुम्हें भी कर्म करने के बाद मर ही पथ पर लाने के लिए आना होगा।

अङ्क ३ दृश्य ५ पृ० ६२।

(११) नरदेव —

किन्तु हुआ अब लज्जित हूँ मैं
घन घनों से सज्जित हूँ मैं।

वही पृ० ६३।

समीक्षण —

नाटक के प्रारम्भ में ही हम नायक विशाख को मानसिक द्वन्द्व में व्यथित देखते हैं। वह सोचता है कि जीवन को सुखात्मक कहना एवं छलना है वास्तव में यह अनेक कर्मों का संकलन मात्र है। यदि जीवन को सुखमय बनाना हो तो अनिवार्यतः इन कठोर कर्मों की सम्पन्नता कर ली ही होगी। मैं जो इस उन्नति की दौड़ धूप में लगा हूँ उसका परिणाम क्या होगा यह ईश्वर ही जानता है। विशाख की प्रस्तुत उक्ति कई बातों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करती है। प्रथमतः जीवन में कर्मों की अनिवार्यता की ओर

द्वितीयत कर्मों की कठोर प्रकृति की ओर और तृतीयत कर्मों के साथ-साथ विशाख की अदृष्ट सम्बन्धी मान्यता की ओर। कथन के पूर्वार्ध में जहाँ वह कर्म वादी प्रतीत होता है वहां उत्तरार्ध उसकी भाग्य विषयक धारणा की ओर संकेत सा करता है। अदृष्ट यहाँ भविष्य में होने वाली घटना-समष्टि की अज्ञता का बोध कराता है जिसे जान लेने को विशाख उत्सुक है। इस कथन से तो विशाख को हम पूर्णत भाग्यवादी नहीं कह सकते। पर आगे चलकर चन्द्रलेखा के यह पूछने पर कि वह कहाँ जा रहा है जब वह झट कह उठता है, जहाँ भाग्य ले जावे तो उसकी भाग्यवादिता मुखरित रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

विशाख के अतिरिक्त नाग सरदार सुश्रवा भिक्षु नरदेव तथा चन्द्रलेखा ने भी भाग्य दुर्दैव ईश्वर की लीला आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो सामान्यत भाग्यवादिता को ही प्रकट करते हुए से जान पड़ते हैं।

इस प्रकार सरसरी नजरों से देखने पर नाटक के पूर्वार्ध में भाग्य अथवा अदृष्ट की अभिव्यक्ति सी ही लगती है पर बात ऐसी नहीं है।

विशाख के गुरु प्रेमानन्द के रंगमंच पर आते ही हमारी यह धारणा एकाएक बदलने लगती है। उसका यह कथन पूरी तरह हमारी पूर्वमान्यता को झकझोर देता है —

'जब तक सुख भोगकर चित्त उनसे नहीं उपराम होता मनुष्य पूर्ण वैराग्य नहीं पाता है। शुभ कर्मयोग के व्यावहारिक रूप ही का अनुकरण करना चाहिए।

प्रेमानन्द की यह शिक्षाप्रद उक्ति विशाख को कर्म-पथ की महानता का संदेश सुनाती है। कर्म पथ भी वह जो व्यावहारिकता से अनुप्राणित हो। प्रेमानन्द से ये वाक्य कहलवाते समय सम्भवत गीताकार का यह कथन प्रसाद जी के स्मृति पटल पर रहा होगा —

नियतस्यतु संन्यास कर्मणोनोपपद्यते

गीता में संयम का उपदेश भी दिया है और प्रेमानन्द भी उसी प्रकार पुन विशाख को कहता है संयम हृदय को विमल बनाना है इसलिए संयम कर्मयोग का आदि बनाना।

इस प्रकार प्रेमानन्द द्वारा विशाख को कर्मवाद की दो प्रमुख मान्यताओं की शिक्षा मिलती है—संयम की और कर्म के व्यावहारिक स्वरूप की। अब

यह विचारणीय है कि कर्मयोग को मनुष्य व्यावहारिक कैसे बनाए। इसका समाधान गीताकार यह कह कर देता है कि कर्मों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए वस्तुतः निष्काम कर्म ही वह सत्कर्म है जिसकी महिमा का गुणगान प्रेमानन्द ने इतस्ततः किया है। एक अन्य उक्ति में कर्म वह सकाम' कर्म की चर्चा भी करता है किन्तु वह तभी तक करणीय है जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो तब तक स्वार्थ प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है तुम्हारा उद्देश्य उत्तम होना चाहिए। जो कर्त्तव्य है उसे निर्भय होकर करो। स्पष्ट है कि ज्ञान प्राप्ति के पूर्व प्रेमानन्द स्वार्थ प्रेरित (सकाम) कर्म करने के पक्ष में भी हैं। किन्तु उसका वास्तविक संदेश निष्काम कर्म योग का ही है। नाटक में ऐसे अनेक उद्धरण हैं जिनमें इस कर्मवाद का अनुपम चित्रण हुआ है। प्रेमानन्द के मुख से निःसृत वाणी मानो प्रसाद की ही वाणी है जो इस नाटक में कर्म प्रधानता का सन्देश बार बार सुनाती है। महर्षि व्यास के मतानुसार भी कर्म ही मनुष्य की विशेषता है –

प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः

(अश्व ४ २०)

अर्थात् कर्म करने से जो प्रकाश जीवन में आता है उसी में मनुष्य देव बन जाता है। वस्तुतः मनुष्य का लक्षण तो कर्म ही है जिसका प्रतिपादन इस नाटक में प्रचुर मात्रा में हुआ है।

प्रेमानन्द हो साधु के रूप में कर्मवाद का यह उद्घोष पुनः करता है –

यह सत्य यही स्वर्ग यही पुण्यधाम है।
उत्तम कर्मधाम यही विश्व कौन है।

प्रेमानन्द की इस शिक्षा का प्रभाव जहाँ विशाख में दुर्बल चरित्र को पुरुषार्थी और कर्मवादी बना देता है वहीं नरदेव भी धर्म पत्नी की दुहाई देता हुआ अपने बुरे कृत्यों के प्रति ग्लानि होता है –

किन्तु हुआ अब ग्लानि है मैं
कर्मफल से सचिन्त है मैं।

इसी प्रकार राजा नरदेव को चन्द्रलेखा के प्रति आसक्त पाकर महारानी उन्हें पाप कृत्यों के बुरे परिणामों के प्रति सचेत करती हुई कहती है क्या अन्याय का दण्ड नहीं मिलता? क्या आपको इसका प्रतिफल नहीं भोगना पड़ेगा। इससे यह सिद्ध होता है बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलता है। यह कर्म नियति का आदर्श है।

निष्कर्ष —प्रसाद जी का यह नाटक पूर्ण रूप से कर्मवाद के प्रभाव से ओतप्रोत है। यद्यपि पहले नायक विशाख भाग्य की सत्ता को कई स्थलों पर स्वीकार करता है, किन्तु अपने गुरु प्रेमानन्द की कर्म सम्बन्धी शिक्षा का उस पर प्रभाव इतना पड़ता है कि वह बाद में कर्मवादी बन जाता है। नरदेव भी पहले कुकृत्यों में फँस कर चन्द्रलेखा के प्रति मोहासक्त हो जाता है किन्तु अन्त में वह भी स्वयं पर लज्जित होता हुआ कर्म फल का गुण-गान करता है। महारानी द्वारा बुरे कर्मों का विध्वंसक फल मिलने की अनिवार्यता का पुरजोर शब्दों में समर्थन हुआ है। इस प्रकार नाटक प्रारम्भ से अन्त तक कर्मवाद का सुन्दर प्रगीत-सा लगता है।

इस नाटक के अधिकांश कर्म सम्बन्धी सन्दर्भों को देखने पर गीता के निष्काम-कर्मयोग का प्रभाव प्रसाद जी पर प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होता प्रेमानन्द ने निष्काम-कर्म को ही सत्कर्म कहा है और उसी को कल्याणकारी सिद्ध किया है।

महारानी का यह कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जिसमें वह कहती है कि अन्याय का धन्धा' क्या पृथ्वी नहीं। नरदेव के पाप-कृत्य साधारण नहीं हैं। हमारे देश का प्रारम्भ से ही यह मान्यता रही है कि यदि कोई अत्युत्कट पाप करे तो उसका फल अगले जन्म में न मिलकर त्वरितगति से इसी जन्म में मिलता है —

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्दिनैः
अत्युत्कटैः पापपुण्यानामिहैव फलमश्नुते।

(यह तीन वर्षों में फिर चाहे तीन मासों में फिर अथवा तीन दिनों में मिले किन्तु अत्युत्कट पाप या पुण्य का फल शीघ्र ही मिलता है।

इस प्रकार के आलोक में देखने पर महारानी का उपरोक्त कथन नाटक में कर्मवाद का गम्भीर व्यंजना प्रस्तुत करता जान पड़ता है। प्रारम्भ में पात्रों में यह कर्म भावना नहीं दीख पड़ती किन्तु प्रेमानन्द का कर्मसंदेश धीरे धीरे सभी को कर्ममार्ग पर आरूढ़ कर देता है। डॉ० हरदेव बाहरी ने भी प्रेमानन्द और विशाख को कर्मवादी बताते हुए प्रेमानन्द के विषय में लिखा है (वे) सत्कर्म कर्तव्य पालन और पुण्य का उपदेश देते हैं नाटक के प्राय सभी पात्र इनकी स्निग्ध वाणी से सत्पथ पर चलने लगते हैं।[१]

(१) डा० हरदेव बाहरी प्रसाद-साहित्य-कोश, पृ० २८०।

इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि इन नाटक म प्रमानन्द के कारण प्राय सभी पात्र कमवादी बन जाते हैं। सत्कम की महिमा जानकर वे अपनी दुबलताओं से मुक्त होते हैं और शुभफलाथ सत्पथ पर अग्रसर होते हैं। अत विशाख पूणत कमवादी नाटक सिद्ध हो जाता है।

जो लोग प्रसाद जी को पूणत भाग्यवादी मानते हैं उनका ध्यान हम इस नाटक की ओर विशेषत आकर्षित करना चाहते हैं क्योंकि हमारी दृष्टि मे कम सिद्धात का इतना स्पष्ट विवेचन प्रसाद के किसी दूसरे नाटक म नहीं मिलता।

## अजातशत्रु

नियति विषयक सदभ —

(१) बिम्बसार —

आह जीवन की क्षणभगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नीव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरो से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे धीरे लुप्त होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है और जीवन सग्राम मे प्रवृत्त होकर अनेक अकाण्ड-ताण्डव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अन्धकार की गुफा म ले जाकर उसका शान्तिमय रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है किन्तु वह कब मानता है? मनुष्य व्यर्थ महत्त्व की आकांक्षा म मरता है अपनी नीची किन्तु सुदृढ परिस्थिति म उसे सतोष नही होता नीचे से ऊचे चढ़ना ही चाहता है चाहे फिर गिरे तो भी क्या?

—अक १ दृश्य २ पृ २७।

(२) जीवक —

अदृष्ट का आदेश मानकर ही मैं आपका अनुगामी हो गया हू।

बिम्बसार —

क्या अदृष्ट सोच कर अकमण्य बनकर तुम भी मेरी तरह बैठ जाना चाहते हो।

जीवक —

नही महाराज अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कमकूप म कूद सकता हू क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही फिर कायर क्यों बनू—कम से क्यों विरक्त रहू।

—अक १ दृश्य ४ पृ० ३६।

(३) रानी —

बालक मानव अपनी इच्छाशक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व भर में छोटे से बड़ा होना यही प्रत्यक्ष नियम है। तुम इसकी अवहेलना क्यों करते हो। महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुंड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो पुरुषार्थ करो इस पृथ्वी पर जिओ तो कुछ होकर जिओ नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें अधिकार नहीं।

—अंक १ दृश्य ८, पृ० ५४।

(४) जीवक —

दोनों अपने कर्म के फल भोग रहे हैं

(५) विरुद्धक —

बस माँ अब कुछ न कहो। आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य हो गया। माँ मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूँगा और उनके रक्त में नहाकर इस कोशल के सिंहासन पर बैठकर तेरी वन्दना करूँगा। आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परीक्षा में उत्तीर्ण होऊँ।

—वही पृ० ५४।

(६) मल्लिका —

भाग्य जो कुछ दिखावे

—अंक २ दृश्य ३ पृ० ७३।

(७) वासवी —

पही समझाने के लिए बड़े बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्याएँ की हैं फिर भी प्रत्येक नियम में अपवाद लगा दिए हैं यह नहीं कहा जा सकता कि अपवाद नियम पर है या नियामक पर। सम्भवतः उसे ही लोग बवंडर कहते हैं।

(८) बिम्बसार —

तब तो देवि प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व भर में स्थान-स्थान पर वात्याचक्र है, जल में उसे भँवर

कहते है स्थल पर उस बवडर न ते हैं राज्य में विप्लव समाज में उच्छ्रृ-खलता और धम में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवडर—यही न ?

अक २ दृश्य ६ पृ० ८०।

(९) प्रसेनजित् —

यदि आज्ञा हो तो मै दीर्घकारायण को अपना सेनापति बनाऊ और इसी बीर मे स्वर्गीय सेनापति व कुल की प्रकृति देखकर अपने कुकर्म का प्रायश्चित करु

—अक २ दृश्य ८ पृ० ८६।

(१ ) गौतम —

हम अपना कतव्य करना चाहिए। दूसरो के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पडती है।

—वही पृ० ६४।

(११) छलना —

घायल बाघिनी का भय दिखाता है ? वर्षा की पहाडी नदी को हाथों से रोकना चाहता है ? देखना इस अवस्था में नारी क्या नही कर सकती। अब तेरा अभिशाप मुझे नही डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिए प्रस्तुत हो जा।

—अक ३ दृश्य १ पृ १०५

(१२) वासवी —

जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है

—वही पृ १०५

(१ ) मल्लिका —

तुम इसलिए नही बचाए गए कि फिर भी एक विरक्त नारी पर बलात्कार और लम्पटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित करो। अपने को सुधारो

—अक ३ दृश्य ३ पृ ११४

(१४) गौतम —

युद्ध नही। तुम लोग कर्तव्य के लिए सत्ता के अधिकारी बनाए गए हो। उसका दुरुपयोग न करो। भू मडल पर स्नेह का करुणा का क्षमा का शासन

फैलाओ। प्राणिमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। इन क्षुद्र विप्लवों से चौंक कर अपने कर्म-पथ से च्युत न हो जाओ।

—अंक ३ दृश्य ५ पृ० १२५,

(१५) मागधी —

वाह री नियति! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आए—कभी वलों को चारा देते देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठाकर पीने में संकोच होता था। कभी नील का वोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ।

—अंक ३ दृश्य ७ पृ० १२६,

समीक्षण

प्रथम अंक के दूसरे ही दृश्य में हम बिम्बसार को मानसिक विकल्पों में आक्रान्त अपने आप से बात करते हुए पाते हैं। वह जीवन की क्षण भंगुरता के प्रति व्यथित और चिंतित है। अदृष्टवादी बन कर वह कहता है "आकाश के नीले पत्र पर उज्ज्वल अक्षरों से लिखे हुए अदृष्ट जब धीरे धीरे लोप होने लगते हैं तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है।" इससे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार अंधकार के गर्भ में कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता वैसे ही अदृष्ट की यवनिका के पीछे क्या है इसका कुछ पता नहीं चलता। जब वह अदृष्ट रूपी अंधकार हटता है तभी मनुष्य के लिए प्रभात (प्रसन्नता) का उदय होता है। मनुष्य अदृष्ट के विरुद्ध जीवन संग्राम में प्रवृत्त होकर अनेक प्रयास करता है किन्तु इसमें क्या वह उस पर विजय पा ही पा सकता है। 'नाक सिकोड़ने' प्रकृति उस अन्धकार की गुफा में जाकर उसका शांतिमय रहस्यपूर्ण भाग्य का चित्र समझाने का प्रयत्न करती है—किन्तु मनुष्य का समझ में वह आता नहीं रहा अतः उन यह स्वाकृति प्रदान नहीं कर पाता।

बिम्बसार के इन वाक्यों में अदृष्ट और भाग्य समानार्थी से बन गए हैं यद्यपि प्रत्येक अपने स्थान पर दोनों का पृथक पृथक महत्त्व है। अदृष्ट जहाँ अन्धकारपूर्ण अज्ञात भविष्य है, वहाँ भाग्य वह शांतिमय और रहस्यपूर्ण दस्तावेज है जिसे प्रकृति—नामा स्त्री मनुष्य को समझाना चाहती है। यहाँ भाग्य के दो विशेषण ध्यानाकर्षक हैं—शान्तिमय और रहस्यपूर्ण—जिनसे प्रसाद की भाग्यसम्बन्धी धारणा पर भी प्रकाश पड़ता है।

इसी अंक के चतुर्थ दृश्य में पुनः अपने ही शब्दों में बिम्बसार स्वयं को अदृष्ट वादी मानता है। जीवक से वह कहता है 'क्या अदृष्ट सोचकर अकर्मण्य बन कर तुम भी मेरी तरह बैठ जाना चाहते हो?' अतः बिम्बसार हमें पूर्णतः एक भाग्याश्रित पात्र दृष्टिगोचर होता है। जहाँ बिम्बसार अदृष्ट में पूरी आस्था का परिचय देता है वहाँ जीवक अदृष्ट की सत्ता मानते हुए भी कर्मवाद का उद्घोष करता है। उसका यह कथन इस नाटक में ही नहीं अपितु प्रसाद के नियतिवाद पर भी अच्छा प्रकाश डालता है नहीं महाराज अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कर्म कूप में कूद सकता हूँ। क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही फिर कायर क्यों बनूँ कर्म से क्यों विरक्त रहूँ। वह बिम्बसार को बता देना चाहता है कि अदृष्ट उसे अकर्मण्य नहीं बना सकता क्योंकि वह उसका प्रतिरोधी न होकर सहायक तत्व है जिसकी सहायता से ही वह कर्म-क्षेत्र में निर्भय अग्रसर होता जाएगा। कुएँ के तल तक जाने के लिए जिस प्रकार रस्सी का अवलम्बन आवश्यक है वैसे ही कर्म क्षेत्र में गहराई तक पहुँचने के लिए अदृष्ट जीवक का सहारा है।

यदि हम बिम्बसार के इस कथन को प्रसादजी का आत्म कथन स्वीकार कर लें तो कहने की आवश्यकता न होगी कि प्रसाद की नियति में कर्म विहीनता नैराश्य अवसाद अथवा जीवन विरक्ति का कोई स्थान नहीं है। वह तो मानो कर्माग्नि को प्रज्वलित करने के लिए घृत रूप है।

इसी अंक के आठवें दृश्य में रानी और विरुद्धक का वार्तालाप भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अपने पुत्र की निष्क्रियता तथा मानसिक दौर्बल्य को देखकर रानी उसमें आशा और पुरुषार्थ की ज्योति प्रज्वलित करती है दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद का ग्रहण किया और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक होगे यह कभी मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था पुरुषार्थ करो इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। माता के इन शब्दों का पुत्र विरुद्धक पर चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ता है। वह अन्तर्द्वन्द्व मानो एकाएक समाप्त हो जाता है वह चारित्रिक दुर्बलता मानो क्षणिक बनकर इन कर्मवादी स्वरों के उद्घोष में गुम हो जाती है और वह कह उठता है बस माँ अब कुछ न कहो आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य होगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के

कारण इन शाक्यों का एक बार संहार करूंगा और उनके रक्त में महावर, इस कोशल के सिंहासन पर बैठ कर तेरी वन्दना करूंगा।

इस प्रकार रानी की यह पुरुषार्थ पूर्ण उक्ति विरुद्धक की कर्म हीनता मिटाकर उसे पुरुषार्थवादी बना देती है। यह भी 'अजातशत्रु' में कर्मवाद के प्रतिपादन का सुन्दर उदाहरण है।

दूसरे अंक के छठे दृश्य में बिम्बसार को हम पुनः नियतिवादी पात्र के रूप में देखते हैं। वासवी से वह पवन-गति की चर्चा करते हुए पूछता है 'उसकी गति तो सम नहीं। ऐसी क्यों?' वासवी इन शब्दों में उत्तर प्रस्तुत करती है, बड़े-बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं फिर भी प्रत्येक नियम में अपवाद लगा दिए हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि अपवाद नियम पर है या नियामक पर। सम्भवतः उसे ही लोग बवंडर कहते हैं। किन्तु बिम्बसार के अनुसार हम तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाए है, जितना चाहता है उतना ही प्रकट करता है।

प्रस्तुत उद्धरणों में पवन की गति को लेकर भाग्य और नियति के संबंध में दोनों पात्र अपनी अपनी धारणाएं व्यक्त करते हैं। बिम्बसार के अनुसार नियति नीला पर्दा है जो न जाने किन किन रहस्यों को अपने में समेटे हुए है किन्तु वासवी के अनुसार पवन में गति तो है किन्तु वह गति सम नहीं है। यह असमता ही मानो उन नियमों का व्यतिक्रम है जिनसे अखिल विश्व संचालित है।

इससे यह सिद्ध होता है कि नियति तो सदैव अपने नियमानुसार कार्य करती है किन्तु जब उन नियमों के मार्ग में कोई बाधा आ जाती है तो बवंडर आने लगते हैं। अर्थात् बवंडर यहाँ भाग्य का पर्याय बन जाता है क्योंकि यह नियम विधान की शृंखला तोड़कर उपस्थित होता है। वैसे नियति को बदला नहीं जा सकता किन्तु बदलने का प्रयास करने पर बवंडर रूपी अनहोनी घटनाएं होने लगती हैं जिनका स्पष्टीकरण बिम्बसार इन शब्दों में करता है 'तब तो देवि प्रत्येक असम्भावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व भर में स्थान-स्थान पर वात्याचक्र हैं जल में उसे भंवर कहते हैं स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं राज्य में विप्लव समाज में उच्छृंखलता और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो चाहे बवंडर।

वासवी और बिम्बसार की उपरोक्त उक्ति में भाग्य और नियति का प्रस्फुटीकरण हुआ है।

तृतीय अंक के सातवें दृश्य में भी मागधी द्वारा नियति की चर्चा दर्शनीय है जब वह अपनी दशा विषय की चर्चा मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत करती है। वासवी ने भी एक स्थल पर 'जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है' कहकर लगभग इसी भावना को व्यक्त किया है। द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में मल्लिका भाग्य जो कुछ दिखावे कहकर नियति का स्मरण करती है।

किन्तु जीवक रानी विरुद्धक आदि के अतिरिक्त कर्म की महत्ता को स्थान स्थान पर भगवान गौतम प्रसेनजित मल्लिका और छलना भी वर्णित करते हैं।

भगवान गौतम प्रसेनजित को कर्म का संदेश देते हुए कहते हैं इन क्षुद्र विप्लवों से चौंक कर अपने कर्म पथ से च्युत न हो जाओ। प्रसेनजित भी स्वर्गीय सेनापति बंधुल को स्मरण करते हुए अपने उन कुकर्मों के प्रति प्रायश्चित की भावना व्यक्त करता है जो उसने किए हैं (मैं) अपने कुकर्मों का प्रायश्चित करूँगा। मल्लिका भी कुकर्मों के प्रायश्चित के लिए विरुद्धक को कहती है जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित करो। अपने को सुधारो। छलना भी देवदत्त को फटकारती हुई उसे कर्म का स्मरण कराती है अब तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिए प्रस्तुत हो जा। आठवें दृश्य (अङ्क २) में गौतम का यह कथन कि दूसरे के मलिन कर्मों का विचार भी चित्त को मलिन कर देता है स्पष्ट रूप से यह अभिव्यक्त करता है कि क्रिया ही नहीं बुरे कर्मों का विचार मात्र भी अशुभ फल का सृजन करता है। इन उक्तियों से हम कर्मवाद का ही संदेश प्राप्त होता है।

निष्कर्ष —प्रसाद की यह नाट्य सृष्टि उनकी नियति भावना के सन्दर्भ में कर्म समन्वयगत नहीं है। पात्रों के कथोपकथनों के आधार पर हम देख चुके हैं कि भाग्य और कर्म दोनों वर्गों का सार्थक प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों की इस नाटक में उपस्थिति है। जहाँ बिम्बसार मागधी वासवी आदि भाग्यवादी लक्षित होते हैं वहीं जीवक रानी विरुद्धक छलना गौतम प्रसेनजित आदि पात्र पुरजोर रूप से कर्मवाद का प्रतिपादन करते हैं। इस प्रकार अजातशत्रु में नियति के इन दोनों ही पक्षों में परस्पर द्वन्द्व देखा जा सकता है। किन्तु हमारी दृष्टि में नाटक की परिणति कर्मवादी स्वरों में

ही होती है यद्यपि बीच बीच में भाग्य और नियति का संगीतमय स्वर भी मुखरित हुआ है।

यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बिन्दु की ओर हम पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। प्रसाद के भाग्यवादी पात्र यद्यपि अदृष्ट भाग्य और रहस्यमयी नियति की बातें करते हैं फिर भी वे कर्मक्षेत्र से पलायन करते हुए नहीं देखे जाते। उदाहरणार्थ हम इस नाटक के पात्र जीवक का नामोल्लेख करना चाहेंगे। नियति की डोरी पकड़ कर निर्भय कर्म कूप में कूद सकने वाला यह पात्र अदृष्ट को अपना सहारा मानता है। उसे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही फिर भी वह कहता है कायर क्यों बनूं कर्म से क्यों विरक्त रहूँ। प्रसाद साहित्य का अवगाहन करने वाले जिन विद्वानों को प्रसाद की नियति अन्धे भाग्य के रूप में दृष्टिगोचित होती है विशेषतः उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे कृपया जीवक की इस उक्ति की सार्थकता पर अवश्य ध्यान दें। वास्तव में प्रसाद जी ने नियति अदृष्ट दैव भाग्य और प्रारब्ध आदि शब्दों का यत्र-तत्र प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है पर मूलतः उनकी नियति भावना में भी कर्म सिद्धान्त का व्यापक प्रभाव है। हम तो कहेंगे कि कर्मवाद ही उनकी नियति नदी का मेरुदण्ड है। डा० सहल का यह कथन अक्षरशः सत्य है —

प्रसाद जी का नियतिवाद निष्क्रियता और निश्चेष्टता की ओर नहीं ले जाने वाला उससे कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। वह कोई ऐसा भाग्यवाद या प्रारब्धवाद नहीं जो पुरुषार्थ के प्रतिकूल पड़ता हो।[१]

प्रसाद की नियति इस नाटक में जहाँ कर्म प्रधान होकर मुखरित हुई है वहाँ यह मानकर भी चली है कि समस्त सृष्टि सुनिश्चित नियमों द्वारा संचालित है। कोई पूछ सकता है कि जब विश्व में सर्वत्र नियम व्याप्त हैं तो उसमें इतना वैषम्य क्यों है—कोई सुखी और कोई दुःखी क्यों नजर आता है। प्रसाद जी ने इस वैषम्य को नियमों का अपवाद कहा है। वस्तुतः नियति तो अपने नियमानुसार ही कार्य करती है पर जब मानव प्रकृति की आवाज नहीं सुनता और अपने दर्प में उन्मत्त होकर उसके मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करता हुआ अकारण ताण्डव करता है तो समझना चाहिए कि वह अशान्ति और दुःख को निमन्त्रण दे रहा है।

(१) डा० कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन (प्रसाद जी के नाटकों में नियतिवाद) पृ० १६।

एक स्थल पर जीवक कहता है कि जो होता है, वह तो होगा ही इसे पढ़कर यह विचार पाठक के मन में उठ सकता है कि जब सभी घटनाएं पूर्वनिर्धारित हैं तो फिर मानव की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का क्या महत्त्व रह जाता है ? इस समस्या का उत्तर हमें आगे चल कर रानी के इस वाक्य में प्राप्त हो जाता है मानव अपनी इच्छा शक्ति से और पौरुष से ही कुछ होता है। सम्भवतः इसीलिए जीवक भी कहता है 'कायर क्यों बनूं कर्म से क्यों विरक्त रहूं।

अजातशत्रु पर बौद्ध धर्म और उसके दुःखवाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है नाटक की परिसमाप्ति में बौद्धधर्म का स्पष्ट प्रभाव है क्योंकि सभी व्यक्ति पश्चाताप प्रकट करते है। शान्त रस की स्थापना के साथ यह नाटक समाप्त होता है।[१] बौद्धों का यह प्रभाव नाटक के अनेक स्थलों को दुःखवादी रंगों में रंग गया है। दो उदाहरण देखें —

(१) पद्मावती —मानवी सृष्टि करुणा के लिए है या तो क्रूरता के निदर्शक हिंसक पशु जगत में क्या कम है ? (पृ० २४)

(२) गौतम — विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है जो प्राणीमात्र में समदृष्टि रखती है। निष्ठुर आदि सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से। मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से (पृ० २६)

बौद्धों का यह दुःखवाद भी ऋतवाद और कर्मवाद से भिन्न नहीं है यह हम प्रसाद के नाटकों में दार्शनिकी का विवेचन करते समय देख चुके हैं।

दुःखवाद और नियतिवाद में एक सम्बन्ध यह भी है कि दुःखी व्यक्ति जब चारों ओर से निराश हो जाता है तब वह भाग्य, नियति आदि की महिमा गाकर अपने में आत्म सतोष के सूत्रों का अनुसंधान करता है जोकि स्वाभाविक भी है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अजातशत्रु में यद्यपि नियतिवाद और करुणावाद का भी पुट है पर नाटक की आत्मा कर्मवादी और पुरुषार्थवादी ही है।

---

(१) हिन्दी साहित्य कोश (स० धीरेन्द्र वर्मा) भाग २, पृ० ६।

## जनमेजय का नागयज्ञ

नियति विषयक संदर्भ

(१) मनसा

क्या इस विश्व के रंगमंच पर नागों ने कोई सपृहणीय अभिनय नहीं किया ? क्या उनका अतीत भी वर्तमान की भाँति अंधकार पूर्ण था ।

अंक १ दृश्य १ पृ० ६ ।

(२) कृष्ण —

जिन पदार्थों की शक्ति अप्रकाशित रहती है उन्हें लोग जड़ कहते हैं । किन्तु देखो जिन्हें हम जड़ कहते हैं वे जब किसी विशेष मात्रा में मिलते हैं तब उनमें एक शक्ति उत्पन्न होती है स्पन्दन होता है जिसे जड़ता नहीं कह सकते । वास्तव में सर्वत्र शुद्ध चेतन है जड़ता कहाँ ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है यह पूर्ण सत्य है कि जड़ के रूप में चेतन प्रकाशित होता है ।

—वही पृ० १२–१३ ।

(३) कृष्ण —

पुरुषार्थ करो जड़ता हटाओ ।

—वही पृ० १३ ।

(४) काश्यप —

राष्ट्र का भला हुआ यह एक स्वतन्त्र धर्म है और ब्राह्मण की अवज्ञा एक भिन्न पाप है । दोनों का परिणाम भिन्न है । हम लोग कर्मवादी हैं । फल दोनों का ही मिलेगा ।

—अंक १ दृश्य ५, पृ० २६ ।

(५) माणवक —

माँ मैं जाता हूँ । भाग्य में होगा तो फिर तुम्हारे दर्शन करूँगा ।

—अंक १ दृश्य ४ पृ० ३४ ।

(६) ऋषि जरत्कारु —

अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है जनमेजय मैं तुमको क्षमा करता हूँ, किन्तु कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं । उनसे भाग कर कोई बच नहीं सकता स्मरण रखना मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है ।

— अंक १, दृश्य ७, पृ० ५३–५४ ।

(७) जनमजय (स्वगत) —

मनुष्य क्या है प्रकृति का अनुचर और नियति का दास या उसकी क्रीड़ा का उपकरण। फिर क्या वह अपने को कुछ समझता है?

—अक २ दृश्य १ पृ० ४७।

(८) नेपथ्य से —

जीने का अधिकार तुझे क्या क्या इसमें सुख पाता है।
मानव तूने कुछ सोचा है क्या आता क्या जाता है।
प्राप्त अविद्या कर्म हुआ क्या जीवन स्वर्ण तरंग सा था।
महाशून्य के पट में पहला चित्रकार क्या आता है
कारण कर्म न भिन्न क्या है कर्म कर्म चलता है।
खेल खेलने आया है तू फिर क्या रोने जाता है।

—वही पृ० ४७।

(९) जनमेजय —

किन्तु मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है। क्या वह कर्म में स्वतन्त्र है?

—अक २ दृश्य ३ पृ० ५६।

(१०) उतंक —

अपने कर्म के लिए रोने से क्या वह छूट जाएगा? उसके बदले में सुकर्म करने होंगे। सम्राट मनुष्य जब तक यह रहस्य नहीं जानता तभी तक वह नियति का दास बना रहता है। यदि ब्रह्म हत्या पाप है तो अश्वमेध उसका प्रायश्चित भी तो है।

—वही पृ० ५६।

(११) जनमजय —

करूँगा। अब एक बार कर्म समुद्र में कूद पड़ूँगा चाहे जो कुछ हो। आलस्य अब मुझे अकर्मण्य नहीं बना सकेगा।

—वही पृ० ५७।

(१२) जनमेजय —

यही उनकी भाग्य लिपि है अदृष्ट है।

वपुष्टमा —

और क्रिया के भाग्य में है कि अपनी अकर्मण्यता पर व्यंग्य सुना करें।

—वही पृ० ५८।

(१३) व्यास —

आयुष्मान तुम्हारे पितामहो ने मुझसे पूछ कर कोई काम नहीं किया था। और न बिना पूछे मैं उनसे कुछ कहने ही गया था क्योंकि वह नियति थी। दम्भ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट के क्रीडा कंदुक हैं। अंध नियति कर्तृत्व-मद से मत्त मनुष्यो की कर्म शक्ति को अनुचरी बनाकर अपना काम कराती है।

—अंक १ दृ० १, पृ० ७३।

(१४) व्यास —

नियामिका शक्ति कृत्रिम स्वार्थ सिद्धि में रुकावट उत्पन्न करती है। ऐसे काम कोई जान बूझ कर नहीं करता और न उनका प्रत्यक्ष में कोई बड़ा कारण दिखलाई पड़ता है उलट फेर को शान्त और विचारशील महापुरुष ही समझते हैं पर उसे रोकना उनके वश की बात नहीं है। क्योंकि उनमें विश्व भर के हित का रहस्य है।

—वही पृ० ७४।

(१५) व्यास —

नियति, प्रबल नियति और कुछ नहीं। ब्राह्मणों की उत्तेजना से तुमने अश्वमेध करने का जो दृढ संकल्प किया है उसमें कुछ विघ्न होगा और धर्म के नाम पर आज तक जो बहुत सी हिंसा होती आई है व बहुत दिनों तक के लिए रुक जाने को हैं।

—वही पृ० ७५

(१६) वपुष्टमा —

कैसा आश्चर्य है। एक व्यक्ति की हत्या जो अनजान में हो गई विधि विहित असंख्य हत्याओं से छुड़ा दी जायगी? आखण्डनाथ कर्म लिपि तेरा क्या उद्देश्य है कुछ समझ में नहीं आता।

—अंक ३ दृश्य २ पृ० ७८

(१७) वपुष्टमा —

मेरा चित्त चंचल हो उठा है। भविष्य कुछ टेढ़ी रेखा खींचता हुआ दिखाई देता रहा है।

—वही पृ० ७९

(१८) उत्तव —

नियति का क्रीडा क ुक नीचा ऊचा होता हुआ अपन स्थान पर पहुँच हा जायेगा। चिन्ता क्या है केवल कम करते रहना चाहिए।

—वही, पृ० ८२

(१९) सुरमा —

मैं उस अदष्ट नक्ति का यन्त्र हू। वह जो मेरे साथ है। मुझ से कोई काम कराना चाहता है।

—अक ३ दश्य ४ प० ८८

(२ ) मणिमाला —

कुकम का कभी अच्छा परिणाम हुआ है ?

—अक ३ दश्य ५ प० ९३

(२१) व्यास —

ब्रह्मचक्र के प्रवतन म कसी कठोर कमनीयता है।

—अक ३ दश्य ६ प ९४

(२२) व्यास —

विश्वात्मा सबका कल्याण करता है।

—वही पृ० ९५

(२३) व्यास —

सम्राट तुमने एक दिन पूछा था कि क्या भविष्य है। देखा नियति का चक्र। यह ब्रह्मचक्र आप ही अपना काय करता रहता है। मैंने कहा था कि यज्ञ म विघ्न होगा। फिर भी तुमने यज्ञ किया ही यज्ञ का काय हो चुका। बालक सृष्टि खल कर चुकी।

—अक ३ दृ० ८ प० १ ८

(२४) समवेत-गान —

हम सब म जो खेल रहा अतिसुन्दर परछाईं सा
आप छिप गया आकर हममें फिर हमको आकार दिया।
पूर्णानमय करता है जो अहमति स निज सत्ता का
तू मैं ही हू इस चेतन का प्रणव मध्य गुजार किया।

—वही प० १०६

समीक्षण -

नाटक के प्रारम्भ में ही कुकुरवंशीय यादवी सुरमा और ऋषि जरत्कारु की पत्नी मनसा का वार्तालाप सुनने को मिलता है। मनसा नागजाति की प्रशस्ति गाते हुए कहती है 'क्या इस विश्व के रंगमंच पर नागों ने कोई स्पृहणीय अभिनय नहीं किया ?' यहाँ विश्व के रंगमंच पर की उक्ति ध्यान देने योग्य है जिससे ध्वनित होता है मानो यह विश्व एक रंगमंच है और जीवात्मा उसका चलता फिरता पात्र है। कामायनी में भी प्रसाद ने कहा है 'विश्व कर्म रंगस्थल है।' लगता है प्रसाद की यह मान्यता रही होगी कि मनुष्य अपने पूर्वार्जित संस्कारों को लेकर संसार में आता है और तदनुसार अभिनय करके चला जाता है। प्रकारान्तर से कर्म-सम्बन्धी धारणा यहाँ ध्वनित हुई लगती है।

इसी दृश्य में व्यास कृष्ण अर्जुन को जड़ और चेतन के विषय में समझाते हुए चेतन की महत्ता प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार जड़ता चेतन का ही निषेधात्मक स्वरूप है। अत: 'सर्वत्र शुद्ध चेतन है जड़ता कहाँ ? यह तो एक भ्रमात्मक कल्पना है।' कृष्ण की इस उक्ति का संदेश ऐसा जान पड़ता है मानो इस विश्व का संचालन करने वाली कोई चेतन सत्ता है जड़ नहीं। यहीं पर यह आभास भी मिलता है कि जिसे चेतनता की संज्ञा से वे अभिहीत करते हैं वह पुरुषार्थ और जिसे जड़ता का नाम देते हैं वह अकर्मण्यता है क्योंकि अर्जुन के यह पूछने पर कि मैं क्या करूँ उनका आदेश है पुरुषार्थ करो जड़ता हटाओ। अत: यहाँ कृष्ण अर्जुन को कर्मवाद का यह संदेश ही देते हुए प्रतीत होते हैं कि पुरुषार्थ करणीय है आलस्य अथवा अकर्मण्यता नहीं।

जनमेजय की राज-सभा में भी कर्म की चर्चा हमें सुनाई देती है। पुरोहित काश्यप का कथन है कि राष्ट्र हित एक स्वतन्त्र धर्म है और ब्राह्मण की अवज्ञा पाप है। हम लोग कर्मवादी हैं। फल दोनों का ही मिलेगा। कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ पर उसका फल अवश्य मिलता है।

इस नाटक के प्रथम अङ्क का सातवाँ दृश्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मृगया खेलते समय हरिण के धोखे में जनमेजय द्वारा ऋषि जरत्कारु की हत्या हो जाती है। उन्हें घायल अवस्था में छटपटाता देखकर जनमेजय कह उठता है अनर्थ हो गया हाय रे भाग्य, आए थे मृगया खेलकर हृदय बहलाने यहाँ हो

गया ब्रह्म हत्या का महापातक। यहाँ दो शब्द विचारणीय हैं—हाय रे भाग्य और ब्रह्म हत्या का महापातक—जो क्रमश जनमेजय को भाग्यवादी और कर्मवादी सिद्ध करते हैं।

मृत्यु से पूर्व जरत्कारु द्वारा कहे गए निम्नलिखित शब्द नाटक के समस्त घटनाक्रम पर अन्त तक छाए रहते हैं —

अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है जनमेजय मैं तुमको क्षमा करता हूँ किन्तु कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं उनसे भाग कर कोई बच नहीं सकता स्मरण रखना मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है।

इस कथन में मुख्यत तीन बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रथमत अदृष्ट की लिपि पर जो कुछ अंकित है उसी के अनुसार मनुष्य को काम करना पड़ता है द्वितीयत कर्मफलों से कोई नहीं बच सकता है क्योंकि वे स्वयं कर्ता के पास पहुँच जाते हैं और अन्तत मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है। प्रथम और अन्तिम बिन्दु अवश्य भाग्यवादी कहे जा सकते हैं किन्तु मध्यभाग स्पष्ट संकेत करता है कि कर्म फलों से कोई अथक प्रयत्न करने पर भी बच नहीं सकता। यहाँ महाभारतकार की इस प्रसिद्ध उक्ति की ओर हमारा ध्यान चला जाता है —

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृत कर्म कर्तारमनुगच्छति। (शान्ति पर्व १८१–१६)

जिस प्रकार सहस्रों गायों में भी बछड़ा अपनी माता के पास चला जाता है उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म कर्ता को पहचान लेते हैं। अत जरत्कारु की उक्ति का मध्यभाग उक्त श्लोक के उत्तरार्ध का अनुवाद ही कहा जाएगा। इस विवेचन से सिद्ध है कि प्रसाद की नियति के सन्दर्भ में जगह जगह उद्धृत किया जाने वाला यह कथन यद्यपि नियतिवादी है पर कर्मवाद में शून्य नहीं है अपितु इससे किसी सीमा तक कर्म मान्यता की सुन्दर पुष्टि भी होती है।

मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है—इस वाक्य पर भी विचार करना यहाँ अत्यावश्यक हो जाता है। इस कथन का यह आशय कदापि नहीं लेना चाहिए कि मनुष्य भाग्य का गुलाम है। वस्तुत मनुष्य के लिए प्रकृति के नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है। भयंकर आँधी और तूफान में बाहर घूमने वाले को कष्ट सहना ही पड़ेगा। समुद्र की उत्ताल

तरंगों के विपरीत तरने का प्रयास निरर्थक ही होगा और गहन अंधकार में अपनी आँखों का उपयोग चाहने वाले को असफलता ही हाथ लगेगी। इसीलिए प्रसाद ने मनुष्य को प्रकृति का अनुचर कहा।[1] यह तो हुआ समष्टि परक अर्थ अब व्यक्तिपरक दृष्टिकोण से देखने पर भी हम पाते हैं कि मानव अपने स्वभाव के अधीन ही होता है। इस नाटक में प्रकृति शब्द का सांख्यपरक अर्थ भी ग्राह्य है जैसा कि नेपथ्य-गीत (पृ० ४७) से झलकता है।

अब नियति' शब्द पर भी थोड़ा विचार कर लें। नियति यहाँ कार्य कारण की उस परम्परा का बोध कराती है जो विश्व का नियमन करती है और जिसके विषय में प्रथम अध्याय में हम बहुत कुछ विचार कर आए हैं। यहाँ यही कह देना उचित होगा कि यह भाग्य का पर्याय नहीं है। किन्तु जनमेजय द्वारा जहाँ नियति और 'कर्म-स्वातन्त्र्य का प्रश्न उठाया गया है, वहाँ संभवतः जनमेजय नियति को भाग्य के अर्थ में प्रयुक्त कर रहा है। यह उसका अपना अर्थ है जरत्कारु की उक्ति का नहीं। इस आलोक में देखने पर जरत्कारु का उपरोक्त कथन नियतिवादी और कर्मवादी भावनाओं का सुन्दर चित्रण कहा जा सकता है।

जरत्कारु का यह कथन बहुत समय तक जनमेजय को उद्वेलित करता रहता है। हालाँकि वह ऋषि के मरणोपरान्त वहीं यह स्वीकार करता है सचमुच मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है—किन्तु थोड़ी ही देर बाद वह स्वयं से ही पूछ बैठता है कि यदि ऐसा है तो फिर क्यों मनुष्य अपने आपको कुछ समझता है। ठीक इसी समय नेपथ्य से उसे कर्मवादी स्वरों में यह गीत सुनाई देता है।

> भाग्य अविद्या कर्म हुआ क्यों जीव स्ववश तब करे था।
> कारण कर्म न भिन्न कहीं है कर्म कर्म चेतनता है।
> खेल खेलने आया है तू फिर क्यों रो जाता है।

फिर भी जनमेजय का विकल्प विकल्प ही रह जाता है। क्या वह (मनुष्य) कर्म में स्वतन्त्र है' वह उत्तंक से पूछता है। उत्तंक द्वारा जनमेजय की समस्या का समाधान इन शब्दों में होता है

---

(१) कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः—गीता ३–५।

अपने कलंक के लिए रोने से क्या वह छूट जाएगा ? उसके बदले में सुकर्म करने होंगे सम्राट, मनुष्य जब यह रहस्य नहीं जानता तभी तक वह नियति का दास बना रहता है। यदि ब्रह्महत्या पाप है तो अश्वमेध उसका प्रायश्चित भी तो है।' यह समझाते हुए उतंक जनमेजय को पुरुषार्थ और सत्कर्म का पाठ पढ़ाता है तथा पूछता है कि वह ब्रह्महत्या के इस पाप से मुक्त होने के निमित्त सुकर्म (यज्ञादि) करेगा या नहीं ? उतंक के कर्म-सन्देश से अत्यन्त प्रभावित होकर कहा गया जनमेजय का यह कथन पुनः नाटक को कर्मवादी रंगत प्रदान करता है "करूंगा अब एक बार कर्म-समुद्र में कूद पड़ूंगा चाहे जो कुछ हो। आलस्य अब मुझे अकर्मण्य नहीं बना सकते।

तृतीय अंक में नियतवादी ऋषि व्यास की उक्तियाँ हमें सुनने को मिलती हैं। वेदव्यास को समझाते हुए वे कहते हैं कि सब कुछ पहले से ही नियत रहता है उसे कोई परिवर्तित नहीं कर सकता दंभ और अधकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट शक्ति के क्रीड़ा कंदुक हैं। अंध नियति कर्तृत्व मद से मत्त मनुष्यों की कर्म शक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य करती है। व्यास का यह कथन दर्शाता है कि नियति के सामने मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा शक्ति का कोई वश नहीं चलता। हम सभी उस विश्व नियामिका शक्ति के हाथों में उपकरण मात्र हैं।

नियति के लिए यहाँ प्रयुक्त हुआ विशेषण अंध भी विचारणीय है। हमारी दृष्टि में यहाँ यह तात्पर्य नहीं लेना चाहिए कि नियति के नियम ही अंधे हैं अपितु यह कहना अधिक ठीक होगा कि नियति स्वयं ही किसी और भी न देखकर अत्यन्त कठोरता से अपने नियमों का पालन करती है। क्योंकि व्यास आगे के कथनों में नियति के मानवकल्याणमय स्वरूप का दर्शन करते हैं।

जब जनमेजय उपरोक्त कथन का तात्पर्य पूछता है तो वे उसे यह कहकर समझाते हैं उलट फेर को शान्त और विचारशील मनुष्य ही समझते हैं पर उसे रोकना उनके वश की बात नहीं है क्योंकि उसमें विश्व भर के हित का रहस्य है। अतः सिद्ध हो जाता है कि व्यास जिस नियति की चर्चा करते हैं वह प्रकृति की नियामिका शक्ति है उसकी सत्ता अपरिहार्य है और उसके समस्त कार्य-व्यापारों के पीछे समस्त विश्व हित का रहस्य सन्निहित है।

इसी अङ्क के द्वितीय दृश्य में वपुष्टमा और उसके द्वारा नियति की सत्ता का स्वीकार करते हुए भी कर्म की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। रानी वपुष्टमा के अनुसार एक व्यक्ति की हत्या का प्रायश्चित करने के लिए असंख्य जीव हत्याएं करना कहाँ तक उचित है। वह जनमेजय की यज्ञ-बलि का विरोध करती हुई कहती है "अखण्डनीय कर्मलिपि, तेरा उद्देश्य कुछ समझ में नहीं आता भविष्य कुछ टेढ़ी रेखा खींचता हुआ दिखाई दे रहा है।" उसके भी कर्म सम्बन्धी अपनी दृढ़ मान्यता का परिचय देता है "नियति का क्रीड़ा कन्दुक नीचा ऊँचा होता हुआ अपने स्थान पर पहुँच ही जाएगा। चिन्ता क्या है? केवल कर्म करते रहना चाहिए।"

किन्तु व्यास के अन्तिम कथन पुनः नियतिवादिता का प्रतिपादन करते हैं। उनके अनुसार 'सर्वत्र नियति केवल नियति है। ब्रह्म-चक्र का प्रवर्तन कठोर' और कमनीयता लिए हुए है जो आप ही अपना कार्य करता रहता है। इस प्रकार ऋषि व्यास नाटक के प्रारम्भ से अन्त तक घोर नियतिवादी पात्र बने रहते हैं।

निष्कर्ष—प्रसाद की इस नाट्य-कृति में नियति की सर्वाधिक चर्चा हुई है। प्रारम्भ से अन्त तक नाटक पर नियतिवादी छाया अत्यन्त स्पष्ट है। किन्तु इसमें प्रसाद का नियति सम्बन्धी दृष्टिकोण कर्म विहीन नहीं रहा है। वस्तुतः इस नाटक में प्रसाद दोनों की महत्ता पर ही बल देते हुए चले हैं। यद्यपि बार-बार यह वाक्य कि मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है पढ़कर पाठक यह सोचने लगता है कि नाटक पूर्णतः नियतिवादी है।

ऋषि जरत्कारु और वेदव्यास इस नाटक के ही नहीं प्रसाद के भी सबसे बड़े नियतिवादी पात्र हैं। दोनों के द्वारा नियति का जो विवेचन विश्लेषण हम नाटक में सुनते हैं उससे प्रसाद की नियति के सम्बन्ध में हमारी ये धारणाएँ बनती हैं —

(क) नियति विश्व की नियामिका शक्ति है, जो कार्य-कारण की परम्परा को लेकर चलती हुई इस विश्व का संचालन कर रही है।

(ख) महर्षि व्यास के शब्दों में इस नियति को कोई परिवर्तित नहीं कर सकता। दम्भ और अहंकारपूर्ण मनुष्य उसके लिए क्रीड़ा-कन्दुक बन जाते हैं।

(ग) नियति कठोर और कमनीय है। कठोर इसलिए कि वह अपरिवर्तनीय है और कमनीय इसलिए कि वह मानव कल्याण का उद्देश्य लेकर चलती है।

(घ) नियति पूर्व नियत है। इसीलिए यद्यपि प्रत्येक मनुष्य उसे नहीं देख सकता किन्तु वेदव्यास जसे महात्मा पहले से ही उसका प्रत्यक्ष ज्ञान कर लेते हैं। फिर भी उसे परिवर्तित करने का सामर्थ्य उनमें भी नहीं है क्योंकि उसमें मानव-कल्याण का उद्देश्य सन्निहित है।

(ङ) नियति चक्र स्वचालित है अथवा उसका कोई सचालक भी है—इस विषय में व्यास का मत है कि नियति अपने आप ही कार्य करती रहती है।

नियति विषयक उपरोक्त दृष्टिकोण स्पष्टत वैदिक ऋतवाद से प्रभावित लगता है। वहाँ भी ऋत को अखण्डनीय अपरिवर्तनीय कार्यकारण-परम्परा युक्त और स्वचालित माना गया है। ऋतवाद की चर्चा करते हुए हम द्वितीय अध्याय में यह देख ही चुके हैं। अत निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रसाद की नियति भावना वैदिक ऋतवाद के प्रभाव को लेकर चली है यद्यपि प्रकारान्तर में वह नए नए प्रभाव ग्रहण करती गई है।

अब हमें नाटक के अन्य पात्रों को लेकर भी 'नियति' विषय विचार करना है। ऋषि जरत्कारु और वेदव्यास के अतिरिक्त भगवान श्री कृष्ण जनमेजय और उत्तक भी नाटक के प्रमुख पात्र हैं। भगवान कृष्ण नाटक के प्रारम्भ में ही अर्जुन को कर्मवाद का सदेश देते हुए जड़ता को हटाकर पुरुषार्थ करने को प्रेरित करते हैं। उत्तक भी बार बार जनमेजय से कहता है कि उसे ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति पाने के लिए कर्मरत होना चाहिए। वह यह मानने से इन्कार नहीं करता कि मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है किन्तु यह तभी तक है जब तक मनुष्य यह रहस्य नहीं जान लेता कि अपना पाप कर्म धोने के लिए उसे प्राण पण से सुकर्मरत होना चाहिए। उत्तक का यह तर्क अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिससे प्रभावित होकर जनमेजय भी पुरुषार्थी बनकर कर्मरत होने की प्रतिज्ञा कर लेता है। नाटक के घटनाक्रम में यह कर्मवादी मोड़ दर्शनीय है। इसी कर्मवाद से प्रेरित होकर जनमेजय नाग यज्ञ का आयोजन करता है इस प्रकार हम देखते हैं कि जनमेजय नियतिवादी पात्र होकर भी कर्मवादी है। उसकी नियतिवादिता उसे अकर्मण्य नहीं बनाती यद्यपि अपने निराशावादी स्वभाव के कारण कहीं कहीं वह निरुत्साह सा दिखाई देता है। किन्तु हम तो यह देखना है कि मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है—मानने वाला यह पात्र भी स्वय को पूर्णत भाग्याश्रित कहाँ कर देता है? ऋषि जरत्कारु भी यह कहने से पूर्व कि मनुष्य प्रकृति का अनुचर और

नियति का दास है यही कहते हुए देखे जाते हैं, 'कर्म-फल तो स्वयं समीप आते हैं, उनसे भागकर कोई नहीं बच सकता।' वपुष्टमा भी प्रशंसनीय कर्मलिपि का गुणगान करती है। जनमेजय के मानसिक द्वंद्व के समय नेपथ्य का गीत भी जो प्रसाद का आत्म वचन सा प्रतीत होता है—कर्म का ही संदेश देता है। अन्त नियति-नटी की लीला प्रधान इस नाट्य रचना में कर्मवाद भी शुद्ध रूप में यत्र-तत्र उभर आता है।

इसमें सन्देह नहीं कि नाटक के घटनाचक्र और ऋषि जरत्कारु तथा वेदव्यास के कथनों से नाटक नियतिवादी भविष्य वाणियों का जमघट-सा लगने लगता है और हम सोचने लगते हैं कि नाटक पूर्णतः नियति भावनाओं से ओतप्रोत है किन्तु पात्रों के मनोविश्लेषण से कर्मवाद की सुन्दर पुष्टि होती है। केवल जरत्कारु और व्यास ही नियतिवाद भावनाओं के स्रोत दिखाई पड़ते हैं। किन्तु डॉ० सहल को तो उनमें भी कर्मवादिता के दर्शन होते हैं "जनमेजय का नागयज्ञ' में बड़े नियतिवादी हैं किन्तु उनमें से कोई भी न निश्चेष्ट होकर बैठता है न कोई निश्चेष्टता का उपदेश ही देता है।"[1] इस प्रकार इन दोनों पात्रों को भी हम कर्म का विरोधी नहीं पाते।

उपरोक्त विवेचन विश्लेषण के आलोक में देखने पर हम कह सकते हैं कि यद्यपि नियतिवाद की दृष्टि से 'जनमेजय का नागयज्ञ' एक अविस्मरणीय कृति है और अन्य किसी नाटक में प्रसाद का रुझान नियति की ओर इतना नहीं रहा है परन्तु फिर भी इस नाटक को पढ़कर हमारी यह पुष्ट धारणा बन जाती है कि प्रसाद जी की नियति भावना कर्म सापेक्षी है कर्म से विरक्त नहीं।

## कामना

नियति विषयक सन्दर्भ

(१) कामना —

पिता का गदन सुन रही थी। मैं उपासना-गृह में जाती हूँ नवीन घटना होने वाली है।

—अंक १, दृश्य ३ पृ० १७

(२) विनाम —

ऐसी सीधी-सादी जाति पर यदि शासन न किया तो पुरुषार्थ ही क्या।

—वही, पृ०

(१) डॉ० कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन पृ० २७

(३) विलास –

भाग्य से आजकल कामना ही (प्रधान) है। परन्तु मेरे कारण शीघ्र इसको पद से हटना होगा।

–वही पृ० १८,

(४) विलास –

ईश्वर है और वह सबके कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का दंड देता है। वह न्याय करता है अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा।

–अं १ दृश्य ५ पृ० २७,

(५) विवेक –

*यह न्याय और अन्याय क्या है? अपराध और अच्छे कर्म क्या हैं।* हम लोग नहीं जानते। हम खेलते हैं और खेल में एक दूसरे के सहायक हैं। इसमें न्याय का कोई काम नहीं। पिता अपने बच्चों का खेल देखता है फिर कोप क्यों?

–वही पृ० २७,

(६) विलास –

तुम लोग पुण्य भी करते हो और पाप भी।

विवेक –

पुण्य क्या है?

विलास –

दूसरों की सहायता करना आदि। पाप हैं दूसरों को कष्ट देना जो निषिद्ध हैं।

–वही पृ० २७,

(७) विलास –

*इस नियम पूर्ण संसार में अनियन्त्रित जीवन व्यतीत करना मूर्खता नहीं?* नियम अवश्य है। ऐसे नीले-नभ में अनन्त उल्का पिंड उनका क्रम से उदय और अस्त होना दिन के बाद नीरव निशीथ पक्ष विपक्ष पर ज्योतिष्मती रात्रि और ग्रह ऋतुओं का चक्र और *नि सन्देह शैशव के बाद उद्दाम यौवन,* तब क्षोभ भरी हुई जरा–ये सब क्या नियम नहीं हैं?

कामना –

*यदि ये नियम हैं तो मैं कह सकती हूँ कि अच्छे नियम नहीं हैं।* ये नियम न होकर 'नियति' हो जाते हैं, असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं।

अंक १, दृश्य १ पृ० ३८,

(८) विलास —

नियमों के भले और बुरे दोनों ही कर्तव्य होते हैं। प्रतिफल भी उन्हीं नियमों में से एक है। कभी-कभी उनका रूप अत्यन्त भयानक होता है। उससे जी घबराता है। परन्तु मनुष्यों के कल्याण के लिए उसका उपयोग करना ही पड़ेगा क्योंकि स्वयं प्रकृति वैसा करती है। देखो, यह सुन्दर फूल झड़कर गिर पड़ा। जिस मिट्टी से रस खींचकर फूला था उसी में अपना रंग रूप मिला रहा है। परन्तु विश्वम्भरा इस फूल के प्रत्येक केशर बीज को अलग अलग वृक्ष बना देगी उन्हें सैकड़ों फूल देगा।

—अंक २, दृश्य १ पृ० ३८ ३९,

(९) विलास

मेरी मानसिक अवस्था कैसे छाया चित्र दिखलाती है। कोई अदृष्ट शक्ति संकेत कर रही है मैं इस देश के अनिर्दिष्ट आकाश पथ का धूमकेतु हूं। चलूंगा मेरी महत्वाकांक्षा ने आकाश और समय दोनों की सृष्टि कर दी है। उसमें पदार्थों के द्वारा नयी सृष्टि के साथ मैं कुहेलिका सागर में विलीन हो जाऊं।

—अंक २ दृश्य ४ पृ० ४८ ४९,

(१०) लीला —

तेरे आभूषणों की तो द्वीप भर में धूम है।

लालसा —

परन्तु दुर्भाग्य की तो न कहोगी।

—अंक २, दृश्य ६ पृ० ५६

(११) दूसरी —

ब्याह कर लो रानी।

कामना —

चुप मूर्ख अपने हाथों से जो विडम्बना मोल ली है उसका प्रतिफल कौन भोगेगा।

अंक ३ दृश्य २ पृ० ७२।

(१२) कामना —

मेरे दुर्भाग्य से।

वही, पृ० ७६।

(१३) माता —

सुभगा विराट् पति मेरे भाग्य में बन्ध था।

अंक ३ दृश्य ५ पृ० ८३।

(१४) विवेक —

दूसरे की रक्षा में पाप का विरोध और परोपकार में प्राण तक दे देने का साहस किस भाग्यवान को होता है।

अंक ३ दृश्य ७ पृ० ६१

(१५) सभी —

खेल लो नाथ विश्व का खेल।

अंक ३ दृश्य ८ पृ ६७।

समीक्षण

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में जब कामना और विलास वार्तालाप में संलग्न होते हैं तभी एक पक्षी बोलता है और कामना घुटने टिका कर सिर झुका लेती है। जब विलास पूछता है कि वह क्या कर रही है तो कामना कहती है पिता का सन्देश सुन रही थी। मैं उपासना गृह में जाती हूं क्योंकि कोई नवीन घटना होने वाली है। इससे लगता है कि कामना पिता रूपी किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास रखती है तथा यह भी व्यंजित होता है कि कुछ घटनाएं पूर्व निर्दिष्ट होती हैं जिनका पूर्वाभास किसी माध्यम से यदा-कदा मिल जाता है। यहाँ पक्षी को उस माध्यम रूप में देखा जा सकता है।

इसी स्थल पर जब कामना उपासना-गृह में चली जाती है तो विलास द्वीपवासियों का दास बनाने की योजना बनाता है और कहता है कि उसका पुरुषार्थ किस काम का है यदि वह ऐसी भोली भाली जाति पर भी अपना शासन स्थापित नहीं कर सका। यहाँ पुरुषार्थ की अभिव्यंजना और कर्मवादी संकेत स्पष्ट है। किन्तु जहाँ विलास पुरुषार्थ की बात करता है वहीं यह जान कर कि आजकल उपासना गृह का नेतृत्व कामना के ही हाथ में है अपने भाग्य का भी स्मरण करता है भाग्य से आजकल कामना ही (प्रधान) है। परन्तु मेरे कारण शीघ्र इसको पद से हटना होगा। यहाँ विलास की भाग्य और पुरुषार्थ परक दोनों मन स्थितियों का चित्रण हुआ है।

पाँचवें दृश्य में जब कामना उपासना गृह का नेतृत्व करती हुई सभी नागरिकों से जब यह कहती है कि वे विलास का उपदेश सुनें तो कई स्त्री पुरुष इसका विरोध करते हैं। विलास उन्हें सचेत करते हुए कहता है कि यदि ऐसा करोगे तो ईश्वर का प्रकोप होगा। ईश्वर की व्याख्या भी वह प्रस्तुत करता है, 'ईश्वर है और वह सब के कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और बुरे कार्यों का दण्ड देता है। वह न्याय करता है अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा।' यहाँ विलास जैसा भौतिकवादी पात्र भी कर्म फल की चर्चा करता हुआ देखा जा सकता है। इसे कहा जा सकता है कि प्रसाद के मन पर इस भारतीय संस्कार की छाया रही होगी कि जो जैसा करेगा उसे वैसा ही फल भोगना होगा। कर्मवादी यह विश्वास ऋग्वेद के समय से ही भारत प्रचलित रहा है।

यहाँ पर जब विवेक विलास से न्याय और अन्याय का तात्पर्य पूछता है तो उसके कथन में भी कर्म शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। विवेक का यह कहना पिता का सन्देश सुनने वाला वाक्य याद दिला देता है। इससे सिद्ध है कि फूल द्वीप के वासी पितारूपी किसी मानवेतर सत्ता में अटूट विश्वास रखते हैं। विलास तो विदेशी होकर भी इसकी चर्चा करता है।

विवेक जब पाप और पुण्य के विषय में अपनी जिज्ञासा व्यक्त करता है तो विलास इन दोनों की व्याख्या करते हुए उसे समझाता है कि दूसरों की सहायता करना ही पुण्य है और किसी को कष्ट देना ही पाप। विलास के इन विचारों को भी हम कर्मवाद की संज्ञा दे सकते हैं।

दूसरे अंक के प्रथम दृश्य में ही विलास कामना को यह शिक्षा देता है कि इस नियमपूर्ण संसार में अनियन्त्रित जीवन बिताना मूर्खता है। नियमों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए वह कहता है, 'नियम अवश्य है। ऐसे नीले नभ में अनन्त उल्कापिंड उनका क्रम से उदय और अस्त होना दिन के बाद नीरव निशीथ पक्ष-पक्ष पर ज्योतिष्मती राका और कूहू ऋतुओं का चक्र और निस्सन्देह शैशव के बाद उद्दाम यौवन तब क्षोभ से भरी हुई जरा ये सब क्या नियम नहीं हैं?' विलास का यह पूरा संवाद वैदिक ऋत सम्बन्धी मान्यता का अनुवाद-सा लगता है। ऋत का एक पर्याय नियम भी है यह हम द्वितीय अध्याय में लिख आए हैं। अतः यहाँ भी प्रसाद पर ऋत-सम्बन्धी प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

किन्तु कामना के अनुसार यदि ये नियम हैं तो यह नियम नहीं अपितु 'नियति' हैं और असफलता की स्थिति को उत्पन्न करने वाले हैं। नियति शब्द का ऐसा प्रयोग हमारे दृष्टि पथ में प्रसाद के अन्य किसी नाटक में नहीं आया। यहाँ नियम और नियति शब्द विलोम रूप में प्रयुक्त हुए हैं। नियति का प्रयोग यहाँ अपरिहार्य दैव या भाग्य के अर्थ में हुआ है जो किसी नियम की परवाह किए बिना अंधाधुंध काम करता है। नियति का यह अर्थ लेने पर यहाँ नियम शब्द का तात्पर्य सुनिश्चित नियम विधान अर्थात् कार्य कारण परम्परा युक्त नियति से ही होगा जो कि ऋत शब्द के बहुत समीप आ जाता है।

प्राण विलास इस नियम परम्परा का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उसकी दृष्टि में प्रकृति मानव-कल्याणमयी है चाहे उसकी नियम परम्परा में कभी कभी अत्यन्त भयानक लगने वाले प्रतिफल भी क्यों न प्राप्त होते हों। प्रकृति का जो पुष्प मिट्टी से उत्पन्न होता है उसी को हम पुनः मिट्टी में मिलते हुए देखते हैं। कोई दर्शक धूल में पड़े बिलखते फूल को देखकर यह कह सकता है कि इसकी यह दशा प्रकृति की क्रूरता का द्योतन कराती है पर वास्तविकता यह है कि इसी पुष्प बीज से वसुधरा पुनः सहस्रों पुष्पों को जन्म देगी। अपने इस प्रकार के विवेचन से विलास यही दर्शाना चाहता है कि ऊपर से देखने पर प्रकृति के नियम क्रूर लग सकते हैं पर वस्तुतः वे समष्टि के सुख के लिए हैं दुःख के लिए नहीं।

इसी अंक के चतुर्थ दृश्य में विलास के सम्मुख जब कामना विवाह प्रस्ताव लेकर आती है तो विलास असमंजस में पड़ जाता है क्योंकि वह लालसा की चंचलता पर मुग्ध है। अपनी मनोदशा के प्रति वह कह उठता है मेरी मानसिक अवस्था कैसा छायाचित्र खिलाती है। कोई अदृष्ट शक्ति संकेत कर रही है। इस स्थल पर विलास मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में पड़कर अपने पुरुषार्थ को भूल जाता है तथा अपने भाग्य की विडम्बना पर आश्चर्य चकित होता है।

द्वितीय अंक के छठे और तृतीय दृश्य में लालसा और कामना द्वारा दुर्भाग्य तथा कर्मफल का सामान्य अर्थों में प्रयोग हुआ है। तृतीय अंक के पंचम दृश्य में एक माता भी अपने पति को फटकारते हुए भाग्य का प्रयोग बातचीत की भाषा में करती है।

अन्त में समवेत स्वरों में जो गीत गाया जाता है उसमें भी नाना कर्मों से निवृत्ति पाकर सुख दुःख के द्वन्द्व से दूर हटकर एक सूत्र में बंध जाने का

मानवतावादी दृष्टिकोण देखा जा सकता है। इस कृति में भी आंशिक कर्मवाद मिल जाता है।

निष्कर्ष —प्रसाद का यह नाटक आद्यान्त प्रतीकात्मक है विशेषत चित्तवृत्तियों के विश्लेषण में ही ध्यान लगा रहता है अत किसी दार्शनिक सिद्धान्त विशेष की पुष्टि इसमें नहीं हुई है। इसीलिए प्रसाद के नियतिवाद के सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण कृति नहीं है।

फिर भी कई स्थलों पर कर्मवादी और ऋतवादी संकेत प्राप्त होते हैं। द्वीप के सभी निवासी किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास रखते हैं। यहाँ तक कि भौतिकता का प्रतिनिधि पात्र विलास भी ईश्वरवादी है। वह यह भी मानता है कि समस्त विश्व का संचालन नियमों द्वारा होता है नियम क्या हैं और किस प्रकार कार्य करते हैं इसका यद्यपि उसके द्वारा पूर्णत स्पष्टीकरण नहीं हो सका है पर जिस प्रकार वह नियम शब्द की विवेचना करता है, उससे यही सिद्ध होता है कि नियमों को वह ऋतवादी मान्यता के परिप्रेक्ष में लेता है। उसने एक स्थल पर अदृष्ट की सत्ता भी स्वीकार की है किन्तु यह उसकी तत्कालीन मानसिक दुर्बलता का ही परिणाम है अन्यथा वह भाग्यवादी नहीं है। उसका चरित्र विलासिता से आतप्रोत होते हुए भी एक कमठ कार्यरत और पुरुषार्थी व्यक्ति का सा चरित्र है। डा० बाहरी के अनुसार 'वह बड़ा कार्यकुशल और पुरुषार्थी है उसमें अच्छी संगठन शक्ति है।'[1]

अपने पुरुषार्थ की वह अपने मुख से भी चर्चा करता है। अपनी अदम्य शक्ति और पुरुषार्थशीलता के कारण ही वह एक बार तो पुन द्वीप पर अपना शासन जमा ही लेता है—चाहे बाद में उसे वहाँ से भागना ही क्यों न पड़ता हो। ईश्वर के विषय में वह कहता है कि वह सबके कर्म देखता है तथा उन्हें कर्मानुसार शुभा-शुभ फल देता है। उसकी इस उक्ति से यह ध्वनित होता है मानो ईश्वर के रूप में यह वरुण की ही महिमा गा रहा हो जो कि अपलक सबके कर्म देखते रहते हैं। अत इस नाटक में प्रकारान्तर से ऋतवादी आलोक में कर्म सिद्धांत की प्रतीति होती है।

अन्त में यह कहना सत्य के अधिक निकट होगा कि प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी नियति विषयक कर्म-सम्बन्धी अथवा ऋतवादी निरूपण नहीं हुआ है

---

(1) डा० हरदेव बाहरी प्रसाद साहित्य कोश, पृ० ३८१।

जहाँ इस प्रकार के संकेत मिलते हैं वे सम्भवतः प्रसाद के हृद्गत संस्कारों के परिणाम स्वरूप ही उपस्थित हुए हैं।

— ० —

## स्कन्दगुप्त

नियति विषयक संदर्भ

(१) धातुसेन — प्रकृति नियमशील है। समय पुरुष-स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है। पुंलिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुंजी है। पुरुष उछाल दिया जाता है उत्क्षेपण होता है। स्त्री आकर्षण करती है। यही जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य है।

—अंक १ दृश्य ३ पृ० २४

(२) अनन्तदेवी —अपनी नियति का पथ मैं अपने पैरों चलूंगी।

अंक १ दृश्य ४ पृ० २६

(३) अनन्तदेवी — सूचीभेद्य अंधकार में छिपनेवाली रहस्यमयी नियति का प्रज्वलित कठोर नियति का नील आवरण उठाकर झांकने वाला

—वही पृ २८

(४) भटार्क —एक दुर्भेद्य नारी हृदय में विश्व प्रहेलिका का रहस्य बीज है। ओह कितनी साहसशीला स्त्री है? देखूं? गुप्त-साम्राज्य के भाग्य की कुंजी यह किधर घुमाती है।

—वही पृ २६

(५) रामा —मूर्ख अभागा कौन है? जो संसार के सबसे पवित्र धर्म कृतघ्नता को भूल जाता है और भूल जाता है कि सबके ऊपर एक अटल अदृष्ट का नियामक सर्वशक्तिमान है

—अंक २ दृश्य ४ पृ ६३

(५) मातृगुप्त —ओह पाप पंक में लिप्त मनुष्य को छुट्टी नहीं। कुकर्म उसे जकड़ कर अपने नागपाश में बांध लेता है।

—अंक ३ दृश्य १ पृ० ८३

(७) मातृगुप्त —ओह सोचा था कि देवता जागेंगे एक बार आर्यावर्त में गौरव का सूर्य चमकेगा और पुण्य कर्मों से समस्त पाप पंक धो जाएंगे

—अंक ४ दृश्य ५, पृ० ११२

(८) चक्रपालित —मनुष्य की अदृष्ट लिपि वैसी ही है जैसी अग्नि रेखाओं से कृष्ण मेघ में बिजली की वर्णमाला एक क्षण में प्रज्वलित दूसरे क्षण में विलीन होने वाला। भविष्यत् का अनुचर तुच्छ मनुष्य केवल अतीत का स्वामी है।

—अंक ४ दृश्य ६ पृ० १२१ २२

(९) स्कन्दगुप्त —चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है— उसी खिलाड़ी पटपरगामी बालक के हाथों का खिलौना

—अंक ४, दृश्य ७ पृ० १२३,

(१०) विजया —अदृष्ट ने इसीलिए उस रत्न रत्न गृह को बचाया है

—अंक ५ दृश्य १, पृ० १२६

(११) स्कन्दगुप्त — परन्तु इस संसार का कोई उद्देश्य है मैं कुछ नहीं हूँ उसका अस्त्र हूँ—परमात्मा का अमोघ अस्त्र हूँ दयापाती हुलचन के भीतर कोई शक्ति कार्य कर रही है पवित्र प्राकृतिक नियम अपनी रक्षा के लिए स्वयं सन्नद्ध हैं। मैं उसी सहायक का एक

—अंक ५ दृश्य २ पृ० १३७

(१२) देवसेना —

> कुछ करोगे कि बस सदा रोकर दीन हो दैव को पुकारोगे।
> रो रहे तुम न भाग्य खाता है आप किस्मत सुम्हीं संवारोगे।

—अंक ५ दृश्य ३ पृ० १४०

समीक्षण —

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में धातुसेन मातृगुप्त द्वारा साम्राज्य में परिवर्तन के विषय में पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है कि इस गतिशील जगत में यदि परिवर्तन हैं तो इसमें क्या आश्चर्य ? वास्तव में परिवर्तन ही का नाम तो जीवन है। स्थिरता तो मृत्यु का पर्याय है। सारे विश्व में स्पन्दन व्याप्त है क्योंकि प्रकृति स्वयं क्रियाशील है। यहाँ समय को भाग्य के समरस रूप में प्रयुक्त करते हुए धातुसेन कहता है 'समय पुरुष और स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथों से खेलता है यही जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य है। धातुसेन द्वारा कहे गये इस कथन का निम्न अत्यन्त स्पष्ट और चौंका देने वाला है। भाग्य मानो उस व्यक्ति का ही नाम है जो मनुष्य को गेंद की

भ ति अपने दानो हाथो से उछालना और नचाता है। भाग्य या यह मानयी कन रूप और उसके हाथा म मानव की कन्दुक स्थिति यह दर्शाती है कि मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का प्रारब्ध के सम्मुख कोई वश नही चलता। कन्दुक क्रीडा सम्बन्धी ऐसा रूपक प्रसाद के अन्य नाटका विशेषकर जनमजय का नागयज्ञ (पृ० ७३ ८२) म भी मिलता है। इस रूपक के विषय म प्रसाद जी के रुझान की चर्चा डा सहल के शब्दो म सुनिए —

पिछली बार जब नाथ द्वारे मे स्थित गवनमेंट क्वार्टर पर श्री मथिलाशरण गुप्त के यहाँ चाय पाने गया ता सयोग स सिद्ध कथाकार श्री रायकृष्ण दास भी वहा थ। बाताही बाता म जब प्रसाद जी के नियतिवाद पर चर्चा छिडी तो रायकृष्ण दास जी न बताया कि उमर खय्याम की निम्नलिखित रुबाई प्रसाद जी को बहुत पसन्द थी —

नहीं हाँ के प्रश्नो म पथ दीन कदुक रखता क्य काम ?
खिलाडी लुढकाता जिस ओर चला जाता दक्षिण या वाम।
हम भी कन्दुक सा हा जान व जो जिसन फेंका अभ्रान्त
दुःख व को भू पर हर आर हमारी जान सारी बात।
(श्री बच्चन द्वारा अनूदित)[1]

सिद्ध है कि प्रसाद जी की नियति यहा-वहा ग्रीक यामियो के अन्ध भाग्य का रूप लेकर भी प्रकट हुई है। धातुसेन का उपरोक्त कथन भी एक ऐसा ही उदाहरण है।

इसी अक के चतुर्थ दृश्य म विजया अनन्तदेवी को अन्त पुर का कठोर मर्यादा का स्मरण कराती ह पर अनन्तदेवी को इसका परवाह कहा ? विजया का वह मन-ताप उत्तर देती है अपनी नियति का पथ मैं अपने परो चलूगी अपनी चिन्ता रहन द। अनन्तदेवी की यह स्वतन्त्र इच्छा शक्ति नाटक क घटनाचक्र को झकझोर कर रख देती है। अपना यही जानकारी नारी जाति की घटक होकर भी अनन्तदेवी ऐसी स्त्री है जो नियति के वशीभूत न होकर उस अपना इच्छानुकूल बनाने व मनाने स आनप्रोत है। भटाक भी उसकी इस प्रवृत्ति की प्रशस्ति करता है। आह कितनी साहसशीला स्त्री है ? दग्ध गुप्त-साम्राज्य क भाग्य की कुजी किधर घुमाती है। भटाक की यह उक्ति

(१) डा० सहल मूल्यांकन (प्रसाद जी के नाटको म नियतिवाद) पृ० १७।

सिद्ध करती है कि अनन्तदेवी जैसी दृढ़ सङ्कल्प वाली स्त्री चाहे तो भाग्य की कुञ्जी को भी घुमा कर साम्राज्य के इतिहास का परिवर्तन कर सकती है, किन्तु नाटक में ऐसा होना नहीं है।

इसी दृश्य में अनन्तदेवी का प्रपञ्चबुद्धि के विषय में कहा गया यह कथन भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जो नियति का सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत करता है 'सूचीभेद्य अन्धकार में छिपनेवाली रहस्यमयी नियति का प्रज्वलित कठोर नियति का नील आवरण उठाकर झाँकने वाला'। अनन्तदेवी के कथनानुसार नियति कठोर है रहस्यमयी है अटल और अपरिहार्य है तथा अन्धकारमयी है। कठोर इसलिए कि वह अपरिवर्तनीय है रहस्यमयी इसलिए कि वह अपने आँचल में 'अनागत' को छिपाए हुए है अपरिहार्य इसलिए कि उसके नियम सुनिश्चित हैं तथा अन्धकारपूर्ण इसलिए कि जैसे घोर अन्धकार में देखना असम्भव है वैसे ही 'नियति' का पूर्व दर्शन भी सम्भव नहीं, यह बात और है कि प्रपञ्चबुद्धि जैसा दम्भी व्यक्ति उसे देख सकने का ढोंग रचता हो।[1]

दूसरे अङ्क के पाँचवें दृश्य में जब शर्वनाग रामा को अभागिन की संज्ञा देता है तो रामा कहती है कि अभागा तो शर्वनाग है जो यह भूल जाता है कि सबके ऊपर एक अटल अदृष्ट का नियामक सर्वशक्तिमान् है। रामा ने यहाँ चेतन सत्ता के रूप में नियति का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। चौथे अङ्क के सातवें दृश्य में किन्तु नियामिका शक्ति का ऐसा ही मानवीकृत स्वरूप स्कन्दगुप्त भी प्रस्तुत करता है। चतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में स्कन्द कहता है कि तू खिलौना है—उसी खेलनेवाले बालक के हाथ का खिलौना

नियति विषयक इन्हीं चर्चाओं के बीच हम भटार्क और मातृगुप्त का कर्मवादी स्वर भी सुनते हैं। तृतीय अङ्क के प्रथम दृश्य में कुकर्मों में फँसे हुए प्रपञ्चबुद्धि के प्रति भटार्क की उक्ति है ओह पाप पङ्क में लिप्त मनुष्य का छुटकारा नहीं। कुकर्म उसे जकड़ कर अपने नागपाश में बाँध लेता है। भटार्क के इस कथन में कर्मवाद के इस सिद्धान्त पर प्रकाश डालते हैं कि लगातार कर्म या कुकर्म करते रहने से वे शुभाशुभ कर्म व्यक्ति को अपने पाश में आबद्ध कर लेते हैं जिनसे छुटकारा पाना असम्भव हो जाता है। चतुर्थ अङ्क के तृतीय दृश्य में मातृगुप्त भी सम्राट के विषय में कोई समाचार न पाकर और दुःखी

(१) तुलनीय —अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता ३–२७

के कश्मीर पर आक्रमण की सूचना सुनकर कहता है "आह! सोचा था आर्यावर्त में गौरव का सूर्य चमकेगा और पुण्य कर्मों से समस्त पाप-पंक धुल जाएंगे।" सुकर्मों से दुष्कर्मों का धुल जाना कर्मवाद की पुष्टि करता है।

चतुर्थ अंक के छठे दृश्य में चक्रपालित अदृष्ट लिपि के ... पर प्रकाश डालता हुआ भाग्य की तुलना विद्युत रेखाओं से करता है। जिस प्रकार काले कजरारे मेघों पर दामिनि एक क्षण का चमत्कृत होकर दूसरे ही क्षण विलीन हो जाती है ठीक वैसी ही गति मनुष्य के भाग्य की भी है। न जाने मनुष्य का भाग्य भी किस क्षण उदय हो जाए और किस क्षण अस्त।

अन्तिम अंक के दूसरे दृश्य में स्कन्दगुप्त अपने को ब्रह्मचक्र का एक पुर्जा मानकर अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति को ईश्वरेच्छा के सम्मुख हीन बतलाता हुआ कह उठता है "परन्तु इस संसार का कोई उद्देश्य है? मैं कुछ नहीं हूं उसका अस्त्र हूं—परमात्मा का अमोघ अस्त्र हूं। मुझे उसके संकेत पर केवल अत्याचारियों के प्रति प्रेरित होना है। किसी से मेरी शत्रुता नहीं क्योंकि मेरी निज की कोई इच्छा नहीं। देशव्यापी हलचल के भीतर कोई शक्ति काम कर रही है। पवित्र प्राकृतिक नियम अपनी रक्षा करने के लिए स्वयं सन्नद्ध हैं। मैं उसी ब्रह्मचक्र का एक ....." स्कन्दगुप्त के ये वाक्य कई बातों पर प्रकाश डालते हैं। प्रथमतः इस विश्व का कोई उद्देश्य है, द्वितीयतः विश्व का नियामक ईश्वर है जिसके हाथों में वह एक उपकरण मात्र है, तृतीयतः ईश्वर उसे अत्याचारियों का नाश करने की प्रेरणा देता है और अन्ततः यह कि प्राकृतिक नियम अपनी रक्षा स्वयं करते हैं।

पंचम अंक के तृतीय दृश्य में देश की विपन्नावस्था को देख कर देवसेना गीता है —

> कुछ करना कि बस सदा रोकर दीन हो दैव को पुकारोगे।
> सो रहे तुम न भाग्य सोता है आप बिगड़ी तुम्हीं संवारोगे।

देवसेना की यह संगीत ध्वनि मानो प्रसाद की ही हृदतन्त्री से झंकरित हुई है। देश दुर्दशा को देख कर भाग्य के विपरीत कर्म का यह संदेश पुनः नाटक में कर्मवादी पक्ष को उभारने में सफल होता है।

निष्कर्ष — स्कन्दगुप्त में प्रसाद का नियति अनेक वेश बदल बदल कर प्रकट हुई है। नाट्य रचना की दृष्टि से प्रसाद की यह प्रौढ़ और सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसीलिए इसमें नियति भावना की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

इसमें नियति नटी का स्वरूप कहीं भाग्यपरक है तो कहीं कर्म प्रधान कहीं वह विश्व की नियामिका शक्ति के रूप में चेतन सत्ता का भान कराती है तो कहीं 'अदृष्ट' बनकर प्रसन्नता का शापन। अतः कहा जा सकता है कि विशेषतः इन नाटकों में प्रसाद की नियति भावना गतिशील है स्थितिशील नहीं, वैसे यह बात प्रसाद की अन्य नाट्य कृतियों पर भी घटित होती है।

जहाँ पर धातुसेन प्रकृति की क्रियाशीलता का वर्णन करते समय (भाग्य) का बिम्ब उस खिलाड़ी के रूप में प्रस्तुत करता है जो अपने दोनों हाथों में स्त्री पुरुष को कन्दुक के समान उछालता है वहाँ प्रसाद की नियति भावना को भाग्यवादी परिवेश में देखा जा सकता है। जिस प्रकार खिलाड़ी के हाथ की गेंद स्वयं में स्वतन्त्र नहीं और खिलाड़ी उसे चाहे जहाँ फेंक सकता है उसी प्रकार वहाँ मानव को दैवाधीन रूप में चित्रित किया गया है। भाग्य सम्बन्धी प्रसाद की यह धारणा ग्रीक वासियों की भाग्यवादियों के समकक्ष पहुँच जाती है। क्योंकि ठीक इसी प्रकार का चित्र[1] उपस्थित करने वाली उमरख्याम की रुबाई को प्रसाद जी बहुत पसन्द करते थे अतः अनुमान किया जा सकता है कि उनका दैववाद के उस रूप पर भी विश्वास था जिसमें मानव की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति भाग्य के सम्मुख निरर्थक सिद्ध हो जाती है और भाग्य मनुष्य को चाहे जैसे नाच नचा सकता है।

अनन्तदेवी का यह कहना कि वह अपना नियति का पथ स्वयं निर्धारित करेगी यह सिद्ध करता है कि असाधारण मनोबल वाला व्यक्ति एक बार तो नियति को चुनौती दे ही सकता है चाहे अन्त में उसकी परिणति वही क्यों न हो जो अनन्तदेवी की हुई। किन्तु अनन्तदेवी की यह गर्वोक्ति हमारे सामने इसका कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करती कि क्या वास्तव में नियति का पथ मानव स्वयं निर्दिष्ट कर सकता है?

इसका उत्तर हम समवाय देता है। जन्म जन्मान्तर में मनुष्य लगातार सत्कर्म करके अपनी भावी नियति का स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। इस नाटक के समवाय पात्र टाटार और मातृगुप्त इसी धारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं। मातृगुप्त का कहना है कि पुण्य कर्मों से पाप पक धुल सकते हैं।

अनन्त देवी का यह कथन कि प्रपंचबुद्धि सूचीभेद्य अन्धकार को चीरकर रहस्यमयी नियति के नील पर्दे के आर पार झाँक सकता है सत्य प्रतीत नहीं

(१) द्रष्टव्य — नचती है नियति नटी-सी
कन्दुक क्रीड़ा-सी करती।

आँसू, ५१।

होता।[1] नियति के आवरण को हटाकर भविष्यत् के दर्शन तो नागयज्ञ के पात्र वेद व्यास जैसा कोई विरला महापुरुष ही कर सकता है प्रपंचबुद्धि जैसा अधम और कुचक्री पात्र नहीं।

नाटक में अनेक स्थलों पर विश्वनियामिका शक्ति को चेतन रूप भी दिया गया है। रामा के शब्दों में सबके ऊपर एक अटल शक्ति का नियामक सर्व शक्तिमान है और स्वयं स्कन्दगुप्त भी उसे 'चक्रप्रवर्तन बालक' कहकर पुकारता है। एक अन्य स्थल पर वह उस परमात्मा को बना देता है। यही नहीं उसकी धारणा है पवित्र प्राकृतिक नियम अपनी रक्षा के लिए स्वयं सन्नद्ध है। इसे भी नियति का मानवीकरण ही कहा जाएगा।

स्कन्दगुप्त ने अपने कथन में यह महत्वपूर्ण बात उठाई है कि इस विश्व का कोई उद्देश्य अवश्य है हम यह प्रसाद का उठाया हुआ प्रश्न लगता है। नागयज्ञ की विवेचना में हम देख चुके हैं कि प्रसाद ने वेदव्यास से कहलवाया है विश्वात्मा सबका कल्याण करता है। स्कन्दगुप्त का विजया भी अदृष्ट के लिए कहती है अदृष्ट ने इसीलिए उस रक्षित स्कन्दगुप्त को बचाया है। जिससे यह ध्वनित होता है कि अदृष्ट भी कल्याण कारक है। नियति को यहां सम्भवतः इसलिए अदृष्ट कहा गया है कि वह पहले से दृष्टिगोचर नहीं होती।

अब यह प्रश्न रह जाता है कि क्या यह नाटक पूर्णतः भाग्यवादी नियतिवादी अथवा कर्मवादी है। इस विषय में किसी एक पक्ष की पुष्टि करना कठिन है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि अनन्तदेवी रामा और स्कन्दगुप्त जहां नियति को मान्यता प्रदान करते हैं धातुसेन जहाँ नियति को भाग्य रूप में ग्रहण करता है चक्रपालित और विजया जहाँ अदृष्ट की महत्ता स्वीकार करते हैं—वहाँ इन में से कोई भी पात्र निश्चेष्ट होकर हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठ जाता। स्कन्दगुप्त जैसा कर्मवीर पात्र भी यद्यपि कहता है—चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलाड़ी वटपत्रशायी बालक के हाथों का खिलौना —तथापि अन्त तक वह कर्म-क्षेत्र में डटा रहता है। कर्मवीर के रूप में उसका चरित्र प्रसाद के किसी नाटकीय नायक से कम नहीं। इसी प्रकार चक्रपालित अदृष्ट लिपि के वि

(१) तुलनीय — कौन उठा सकता है धुंधला—
पट भविष्य का जीवन में।
प्रथमपथिक पृ० ३।

लगाग चाचल्य को तो स्वीकार करता है तुच्छ मनुष्य को भविष्यत् का अनु चर तो बताता है किन्तु दोन हिन म कथ म कधा मिलाकर स्कन्दगुप्त के साथ कमरत भी रहता है। विजया का कथन है कि वह वीर हृदय है। प्रपचबुद्धि भी अपने उद्देश्य-पथ का पार करने म जल का तरह जुटा रहता है। अनन्तदेवी का तो कहना ही क्या अपनी अनात महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति म वह क्या क्या नहीं करता। भटार्क और मातृगुप्त तो कमठता के हैं ही। नाटक के उत्तराध में देवसेना का गीत भी कमवाद का सुन्दर उदाहरण है जिसम नाटककार की स्वानुभूति ही मुखरित होती सी भी प्रतीत होती है। इस प्रकार स्कन्दगुप्त के य सभी पात्र चाहे वे धारागत हो अथवा अधम अपने अपने कम गैत्र म अन्त तक जमे रहते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि यत्रतत्र वे नियति नटी का गुणगान भी करते सुने जाते हैं।

अन्त निष्कर्षत यह कहना ही उपयुक्त होगा कि स्कन्दगुप्त म भी प्रसाद नियतिवादी तो हैं पर उस नियति भावना म भी अकमण्यता नहीं पौरुष है निराशा नहीं महत्वाकांक्षा है निवृत्ति नहीं प्रवृत्ति है, जड़ता नहीं स्पन्दन ही स्पन्दन है।

—०—

## चन्द्रगुप्त

नियति विषयक सन्दर्भ --

(१) मिहरण —आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्र और प्रताडना की लेखनी और मसि प्रस्तुत हो रही है।

अक १ दृश्य १ पृ० २।

(२) आम्भीक —अतीत के सुखों के लिए सोच क्यों अनागत भविष्य के लिए भय क्यों और वतमान को मैं अपने अनुकूल बना ही लूंगा फिर चिन्ता किस बात की ?

वही, पृ० ८।

(३) अलका —सत्य है महाराज जिस उन्नति की आशा म आम्भीक ने यह नीच कम किया है उसका फल यह है कि आज मैं बन्दिनी हूँ सम्भव है कल आप हृणि और परसों गांधार की जनता बेगार करेगी।

अक १ दृश्य ८ पृ० ४१।

(४) सिकन्दर — भविष्यवाणियाँ प्राय सत्य होती हैं।

अक २ दृश्य १ पृ० ६१।

(५) चन्द्रगुप्त —राजकुमारी समय नहीं देखो वह भारतीयों के प्रतिकूल दल ने मथमाता का सूना किया है

अंक २ दृश्य ३ पृ ७४।

(६) पर्वतेश्वर —आह ऐसा अपमान जिस पर्वतेश्वर ने वंश ऊंचा करके भाग्य से हमी ठठा दिया था उसी का तिरस्कार

अङ्क ३ दृश्य २ पृ० १११।

(७) पर्वतेश्वर — परन्तु दैव प्रतिकूल हो तब क्या किया जाय ?

अङ्क २ दृश्य ५ पृ० ८६।

(८) चाणक्य —मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली भाँति परिचित रहता है परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत रहना चाहिए। असम्भव कहकर किसी काम को करने से पहले कर्म-क्षेत्र में काँप कर लड़खड़ाओ मत पौरव।

अङ्क ३ दृश्य २ पृ ११३।

(९) चन्द्रगुप्त —भविष्य के गर्भ में बहुत से रहस्य छिपे हैं।

वही पृ० ११७।

(१०) राक्षस — कोई भयानक घटना होने वाला है।

अङ्क ३ दृश्य ६ पृ० १४५।

(११) शकटार —जीवित हूँ नन्द नियति सम्राटों से भी प्रबल है।

वही पृ १४६।

(१२) चन्द्रगुप्त —कल्याणी कल्याणी यह क्या ?
कल्याणी —वही जो होना था।

अङ्क ४ दृश्य १ पृ १५४-५५।

(१ ) चन्द्रगुप्त — न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में रिक्त चिह्न लगा देता है।

अङ्क ४ दृश्य ४ पृ १६४।

(१ ) चन्द्रगुप्त — जागरण का अर्थ है कर्म क्षेत्र में अवतीर्ण होना। और कर्म क्षेत्र क्या है ? जीवन संग्राम किन्तु भीषण संघर्ष करके भी मैं कुछ नहीं हूँ। मेरी सत्ता एक कठपुतली-सी है

अङ्क ४ दृश्य ५ पृ० १६८।

(१५) सिंहरण —तो नियति कुछ अदृष्ट का सृजन कर रही है

वही पृ० १७१।

(१६) चाणक्य — नियति अब उन्हीं दोनों को एक दूसरे के विपक्ष में खड्ग खींचे हुए खड़ा कर रही है।

अङ्क ४ दृश्य ६, पृ० १७४।

(१७) चाणक्य — वह तो होकर रहेगा जिसे मैंने स्थिर कर लिया है। वर्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलद-पटल में बिजली के समान नाच उठती है

वही पृ० १७४।

(१८) सिंहरण — मनुष्य साधारण धर्मा पशु है विचारशील होने से मनुष्य होता है और निःस्वार्थ कर्म करने से वही देवता भी हो सकता है।

वही पृ० १८०।

अलका — मेरा क्षुद्र नाम है उसकी साधना के लिए प्रकृति अदृष्ट देव या ईश्वर, कुछ न कुछ अवलम्ब जुटा ही देगा।

वही पृ० १८०।

(२०) चन्द्रगुप्त —अदृष्ट, खेल न करना चन्द्रगुप्त मरण से भी अधिक भयानक का आलिंगन करने के लिए प्रस्तुत है

अङ्क ४ दृश्य ८ पृ० १९०।

(२१) राक्षस —अदृष्ट देव प्रतिकूल है।

अङ्क ४ दृश्य ११ पृ० २०१।

(२२) चाणक्य —समय सागर निस्तरंग है और पवन उत्पाति निर्मल है। तो क्या मेरा धर्म तूफान वह अपना निर्मित आतङ्क उतार कर धर चला

अङ्क ४ दृश्य १२ पृ० २०८।

समीक्षण —

नाटक प्रारम्भ होते ही हम सिंहरण को चाणक्य के वातावरण में व्यस्त पाते हैं। चाणक्य के यह पूछने पर कि यवनों के दूत यहाँ क्या आए हैं सिंहरण देश की भावी परिस्थितियों के विचार में मग्न होकर कहता है कि आर्यावर्त का भविष्य लिखने के लिए कुचक्रों का व्यूह रचा जा रहा है। सिंहरण के इस कथन से ध्वनित होता है कि भविष्य पूर्व लिखित होता है। यह व्यक्ति का ही नहीं देश अथवा जाति का भी हो सकता है।

अलका से यह सुनकर कि मनुष्य को जीवन और सुख का भी ध्यान रखना चाहिए आम्भीक का उत्तर है कि उसे अतीत के सुखों की तनिक भी चिन्ता नहीं क्योंकि उसमें वर्तमान को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता है। आम्भीक का यह पौरुष उल्लेखनीय है। उससे उसकी अदम्य इच्छा शक्ति पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

सिकन्दर एनिसाक्रीटीज से चाणक्य की भविष्यवाणी की चर्चा करते हुए कहता है भविष्यवाणियाँ प्राय सत्य होती हैं। सिकन्दर की भविष्य के प्रति यह स्वीकृति उसे किसी सीमा तक नियतिवादी सिद्ध करती है।

दूसरे अंक के क्रमश तीसरे और पाँचवें दृश्य में चन्द्रगुप्त तथा पर्वतेश्वर प्रतिकूलता की चर्चा करते हैं। चन्द्रगुप्त कल्याणी को युद्धक्षेत्र में भारतीयों के प्रतिकूल मेघ घटा के घिर आने के संदर्भ में और पर्वतेश्वर अलका के सम्मुख अपनी गर्वोक्ति के संदर्भ में क्रमश दैव का स्मरण करते हैं।

आग पर्वतेश्वर अपमानित होकर अपने अन्तर्द्वन्द्व की आग में जलता हुआ आत्महत्या से पूर्व अपनी ही बड़ाई करते हुए कहता है कि वह पर्वतेश्वर जो भाग्य से हँसी ठठा किया करता था आज एक स्त्री से अपमानित हो गया। अत अब वह जीकर क्या करेगा?

पर्वतेश्वर को मृत्यु के मुख से बचाने के पश्चात् चाणक्य उसे समझाता है कि उसे किसी कार्य को असम्भव कहकर टालने से पूर्व कर्म क्षेत्र में लड़खड़ाना शोभा नहीं देता। चाणक्य द्वारा कर्म का यह सन्देश द्रष्टव्य है।

इसी अंक के दूसरे और नवें दृश्य में क्रमश चन्द्रगुप्त और राक्षस द्वारा भविष्य तथा भविष्य में होने वाली अशुभ घटना का सांकेतिक प्रयोग हुआ है—जो कि साधारण अर्थों में है।

शकटार जब अंधकूप से बाहर निकल कर नन्द की सभा में आता है तो नन्द आश्चर्य चकित हो उठता है। शकटार कहता है नियति सम्राटों से भी प्रबल है। यहाँ शुद्ध रूप से नियतिवादी व्यंजना हुई है।

कल्याणी जब आत्मघात कर लेती है तो चन्द्रगुप्त के मुख से सहसा फूट पड़ता है यह क्या? कल्याणी का उत्तर है वही जो होना था —इससे ज्ञात होता है कि यह पूर्व निर्दिष्ट ही था।

एक स्थल पर चन्द्रगुप्त उद्विग्न है कि न जाने कौन उसकी सम्पूर्ण सूची में रिक्तचिह्न लगा देता है। दूसरे स्थल पर कर्म क्षेत्र की महत्ता जानकर

भी वह स्वयं को एक कठपुतली की संज्ञा देता है। यहाँ नायक परिस्थितियों के द्वन्द्व का शिकार है।

जहाँ सिंहरण के लिए नियति कुछ अदृष्ट खेल का सर्जक बन जाता है वहीं चाणक्य चन्द्रगुप्त और सिल्यूकस के लिए कहता है कि नियति इन्हें एक दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी बना उठी है। यहाँ पर चाणक्य द्वारा उसकी प्रबल इच्छा शक्ति का चित्रण नाटककार ने इन शब्दों में कराया है 'वह तो होकर ही रहेगा जिसे मैंने स्थिर कर लिया है।

सिंहरण कर्मवादिता का उद्घोषक बनकर निःस्वार्थ कर्म का प्रतिपादन करते हुए कर्म द्वारा मनुष्य देवत्व प्राप्त कर सकता है—इस तथ्य का उद्घाटन करता है।

आगे चलकर चौथे अंक के तेरहवें दृश्य में चाणक्य ने कर्म कुलाल चक्र के रूपक द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से कर्मवाद का प्रतिपादन किया है जिसमें स्पष्ट है कि प्रसाद जी कर्म-कुलाल चक्र द्वारा ही निर्मित भाँड उतरवाने का कार्य करवाते हैं। कर्म का यह मानवीकृत रूप जहाँ आकर्षक है वहाँ ग्राह्य भी।

निष्कर्ष —

यद्यपि नाटक में अनेक पात्र दैव 'अदृष्ट भाग्य और भविष्य आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं किन्तु नाटक की मूल आत्मा से कर्मवादिता का स्वर ही प्रस्फुटित होता है। 'वह तो होगा ही जिसे मैंने स्थिर कर लिया वर्तमान भारत की नियति मेरे हृदय पर जलदपटल में बिजली के समान नाच उठती है। —चाणक्य का यह कथन नाटक में पूर्वनिर्दिष्टवादिता का सुन्दर सृष्टि करने में सफल है। यही नहीं चाणक्य का सारा चरित्र नाटक की पुरुषार्थ' की ओर अग्रसर करता है। चन्द्रगुप्त सिंहरण, पर्वतेश्वर राक्षस आदि सभी के चरित्रों पर इस पुरुषार्थ की छाया है। चन्द्रगुप्त का तो जीवन में 'एक क्षण भी विश्राम नहीं युद्ध और केवल युद्ध। इच्छाशक्ति का यह इतना पक्का है कि अवसर आ जाने पर अश्व की पीठ से ही शिविर का काम ले लेते। अवसर आते ही वह चाणक्य का नंद के जेल से भी छुड़ा लाता है। चन्द्रगुप्त जैसे कर्मवीर पात्र को रखकर प्रसाद ने इस नाटक में पूरी तरह से कर्मवादिता का समावेश कर लिया है। यद्यपि एक-दो स्थानों पर वह कतिपय निराशाप्रद वाक्य भी बोलता है पर यह उसके उस हृदय पक्ष की हूक है जो कल्याणी या मालविका के लिए दग्ध है। चाणक्य का यह कथन भी कर्म की

महत्ता प्रतिपादित करता है चन्द्र-सागर निस्तरंग है और नाग-ज्योति निमग्न है। तो क्या मेरा कम कुलाल-चक्र अपना निर्मित भाग्य उतार कर धर चुका ?

और तो और नाटक के स्त्री पात्र कल्याणी, मालविका अलका आदि भी अपने अपने कर्म क्षेत्र में डटे ही रहते हैं।

अतः चन्द्रगुप्त नाटक मूलतः कर्मवाद का ही उद्घाटक है यद्यपि यत्र तत्र नियतिपरक शब्दों के प्रयोग देखने को मिलते हैं। वहां कहीं पूर्वनिर्दिष्ट बाद की भी छाप स्पष्ट है।

— ० —

## एकघूंट

नियति-विषयक-संदर्भ —

(१) आनन्द —मैं उन दार्शनिकों से मतभेद रखता हूँ जो कहते आए हैं कि संसार दुःखमय है और दुःख के नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ है।

—वही पृ २०।

(२) आनन्द —यह जो दुःखवाद का पचड़ा सब धर्मों ने गाया है उसका क्या रहस्य है ?

—पृ ३४।

( ) झाड़वाला — विधाता ने मेरे जीवन को नए चक्कर में जुतने का मन्त्र किया।

वही पृ ३६।

(४) वनलता —मुझे तो यही सिखाया गया है कि सब दुःख है सब निस्सार हैं मरना एक एक घूंट प्यास बनी है।

आनन्द —किन्तु मैं मृत्यु का अस्तित्व ही नहीं मानता।

—वही पृ० ४०।

समीक्षण और निष्कर्ष —

प्रसाद जी का यह सिद्धान्तवादी नाटक है जिसमें आनन्दवादी विचार धारा के दर्शन होते हैं। प्रतीकात्मक शैली तथा आनन्दवादी पक्ष की पुष्टि की ओर ही नाटककार का ध्यान लगा रहने के कारण नियति विषय कोई तथ्य उद्घाटित नहीं हो सका है। स्त्री और पुरुष नाटक में क्रमशः हृदय और

मस्तिष्क पक्ष के प्रतिनिधि हैं। आनन्द का विश्व की कामना का मूल रहस्य बनाया गया है और दुःख के चिन्तन का पाप।

नियति विषयक किसी भावना की अभिव्यक्ति नाटक में न होने के कारण हम यही कहेंगे कि इस दृष्टि से यह नाट्य रचना गौण है। बस प्रकारान्तर से एक दो स्थलों पर कर्म की ध्वनि सुनाई पड़ती है। फ़ाइवाल की विधाता पर आस्था है।

## ध्रुवस्वामिनी

नियति विषयक सन्दर्भ —

(१) ध्रुवस्वामिनी —मेरे भाग्य विधाता यह कैसा इन्द्रजाल ?

अङ्क १ पृ० १२।

(२) खड्गधारिणी —अब तो अदृष्ट ही कुमार के जीवन का सहायक होगा।

—वही पृ० १३।

(३) ध्रुवस्वामिनी —हाँ जीवन के लिए कृतज्ञ उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमान पूर्ण आत्मविज्ञापन का भार ढोती रहूँ—यही क्या विधाता का निष्ठुर विधान है ? छुटकारा नहीं ? जीवन नियति के कठिन आदेश पर चलेगा ही ? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है ?

—वही पृ० २८।

(४) ध्रुवस्वामिनी — नियति न अभाव भाव से माना तू ने तपी हुई वसुधा को क्षितिज के निर्जन में सायंकालीन शीतल आकाश में मिला दिया हो। जिस वायु विहीन प्रदेश में उखड़ी हुई साँसों पर बन्धन हो—अर्गला हो वहाँ रहते रहते यह जीवन असह्य हो गया था। तो भी मरूँगी नहीं। संसार के कुछ दिन विधाता के विधान में अपने लिए सुरक्षित करा दूँगी

—वही पृ० ३१।

(५) शकराज —सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।

—अङ्क २ पृ० ३६।

(६) शकराज —भाग्य ने मुकुट के लिए जिन्हें चुन लिया है, उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता है। यह कितनी दयनीय दशा है।

—वही, पृ० ४०।

(७) ध्रुवस्वामिनी —न मेरे भाग्य के आकाश में नक्षत्र न था ... गति न करा।

—वही पृ० ४३।

(८) चन्द्रगुप्त —विधाता की स्याही का एक बिन्दु गिरकर भाग्य लिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। मैं आज यह स्वीकार करता हूँ ... कि अब नहीं मरी है

—वही पृ० ५५।

(९) ध्रुवस्वामिनी —भाग्य के ... लौट ... का यह मिथ्या दोष कोई नहीं सहेगा। तुम्हारा यह दुर्दैव भी नहीं।

—वही पृ० ५७।

समीक्षण —

नाटक के प्रारम्भ में ही जब शिविर में बन्दिनी ध्रुवस्वामिनी खड्गधारिणी स्त्री से वार्तालाप करना चाहती है और वह गूँगी होने का अभिनय करती है तो ध्रुवस्वामिनी भाग्यविधाता को स्मरण कर अपने दुर्दिनों को कोसती है। यहाँ भाग्य का सामान्य प्रयोग हुआ है।

इसी अंक में ... आत्महत्या करते समय जब सहसा चन्द्रगुप्त आकर ध्रुवस्वामिनी को रोक लेता है तो रामगुप्त की भर्त्सना के स्वर में कहती है जीवन के लिए ... उपकृत और आभारी होकर किसी के अभिमानपूर्ण आत्म विज्ञापन का भार ढोती रहूँ? जीवन की विषम परिस्थितियों के आकाश ... दुःख से ... प्रश्न कर उठती है। जीवन नियति के कठोर आदेश पर चलेगा ही? तो क्या यह मेरा जीवन भी अपना नहीं है? नायिका का यह अन्तर्द्वन्द्वात्मक विकल्प प्रभावोत्पादक है।

चन्द्रगुप्त के प्रति आकृष्ट हो जाना इसके लिए स्वाभाविक ही था। इस आकर्षण ने उसकी जीवन दृष्टि को निराशा के गहन गह्वर से निकालकर आशा के तार पर ... कर लिया। उसे नियति भी अब सुखप्रद प्रतीत होती है। वह भी अब अज्ञात भाव से ... द्वारा समस्त वसुधरा को क्षितिज के निर्जन और ... से मिलाती है। उसको जीवन रामगुप्त के साहचर्य में रहते रहते असह्य बन गया था किन्तु चन्द्रगुप्त को पाकर वह ... होकर कहती है ... तो भी ... नहीं। संसार के ... विधाता के विधान में अपने लिए सुरक्षित करा लूँगी। यह उसकी आत्म आत्मशक्ति की और स्वतः प्रेरित निष्ठावाद का ज्वलन्त उदाहरण है।

ध्रुवस्वामिनी की यही इच्छा शक्ति और स्वतः निर्दिष्टवादी भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है जब वह रामगुप्त के सम्मुख ही चन्द्रगुप्त से कहती है 'मैं उक दा इन लौह शृंखलाओं का यह मिथ्या त्याग नहीं सहूँगा। तुम्हारा शुद्ध दुर्ग भी नहीं। उसकी यह उक्ति उसके चरित्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन की स्मारिका है। इससे पूर्व वह निराशावादी अधिक थी किन्तु यहाँ उसका अदम्य साहस दर्शनीय है।

एक स्थल पर चन्द्रगुप्त पुरुषार्थी तथा बार बार हारकर भी भाग्य की मान्यता को स्वीकार करता है विधना की स्याही का एक बिन्दु गिरकर भाग्यलिपि पर कालिमा चढ़ा देता है। इस कथन में भाग्य के अटल विधान की ध्वनि है। किन्तु नायक का यह कथन परिस्थिति उद्भूत है यह उसका स्वभाव नहीं।

चन्द्रगुप्त और ध्रुवदेवी के अतिरिक्त शकराज नाटक का तीसरा प्रमुख पात्र है। यद्यपि वह धूमकेतु को देखकर भयभीत हो उठा था फिर भी पुरुषार्थी भावनाओं का वह श्रेष्ठ प्रतिनिधि है सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के नाम हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।

निष्कर्ष —

अन्तिम नाट्य रचना होने के कारण प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ध्रुवस्वामिनी का चरित्र दो रूपों में विभिन्न हुआ है। पूर्वार्द्ध में वह निराशावादी, नियतिवादी और जीवन से निराश है उत्तरार्ध में इसके विपरीत। उसे आत्महत्या करने से चन्द्रगुप्त बचा लेता है। इस आकस्मिक संयोग से उसकी यह दृढ़ धारणा बनती है कि मनुष्य स्वयं भी अपने प्राणों का स्वामी नहीं। मृत्यु का क्षण नियत होता होगा तभी तो वह चाहकर भी मर नहीं सकी। इसी धारणा ने मरणवरण ध्रुवस्वामिनी को पूर्व निर्दिष्टवादी नियतिवादिनी बना दिया। यहाँ नहीं चन्द्रगुप्त को अपने सम्मुख रूप में देखकर नियति के प्रति उसे आकर्षण हो जाता है और वह कह उठती है मैं भी नहीं मानती कि क्षुद्र शक्ति विधाता के विधान में अपने लिए कुछ लिख सकती।

नाटक के पूर्वार्ध में परिस्थितियों की दासी ध्रुवस्वामिनी के उत्तरार्धभाग में कहे गए ये वाक्य सिद्ध कर देते हैं कि प्रसाद मूलतः कर्मवादी हैं आशावादी हैं और मुख्यतः इस नाटक में स्वतः प्रेरित निर्दिष्टवादी। ध्रुवस्वामिनी के

विषय म बाहरी जी लिखते है वह नियतिवादी ह तो भी कम के प्रति उसकी उत्तेजना हलचल और भावुकता बनी रहती है। [१]

इस नाटक से यह सिद्ध भी होता है कि प्रसाद जी की नियति कल्पना व्यक्तिगत ही नहीं अपितु उसका विस्तार वि व परिधियों तक गया है। ध्रुवस्वामिनी क यह कथन पर कि क्या उसका अपना जीवन भी उसका नहीं है–प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त के मुख से कहलवाया है दनि जीवन किसी की सपत्ति है।'

ध्रुव स्वामिनी के अतिरिक्त शकराज और चन्द्रगुप्त नाटक के उल्लेखनीय पुरुषार्थवादी पात्र हैं। शकराज क लिए पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खोजता है और चन्द्रगुप्त यद्यपि विधना की स्याही म विश्वास रखता होगा किन्तु वही धीर वीर और कर्मनिष्ठ पात्र के रूप म हमसे मिलता है।

यहाँ नाटक के नाम पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। ध्रुवस्वामिनी का अर्थ है वह स्त्री जिसका स्वामी निश्चित हो। किन्तु नाटक में हम उसे एक ओर रामगुप्त की पत्नी के रूप म देखते हैं तो दूसरी ओर चन्द्रगुप्त की स्नेहाश्रिता प्रमिका रूप में। कहा जा सकता है कि विधि न तो उसे रामगुप्त जैसा पति ही दिया–किन्तु उसने पुरुषार्थ और कर्मठता से अयाचित संपत्ति को त्यागकर अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का परिचय देते हुए चन्द्रगुप्त को वरण किया। यहाँ भी नाटक कर्मवादी सिद्ध होता है।

डा० सहल के अनुसार जहाँ तक ध्रुवस्वामिनी नाटक का सम्बन्ध है इसमें यत्र तत्र पूर्वनिर्दिष्टवाद का स्वर है। किन्तु यह पूर्वनिर्दिष्टवाद न तो किसी पात्र को निष्क्रिय बनाता है और न हतोत्साह ही। इस पूर्वनिर्दिष्टवाद से जीवन में एक प्रकार से नए रस का सचार होता है। [२]

---

(१) डॉ हरदेव बाहरी प्रसाद–साहित्य–कोश पृ० २०३।
(२) डा कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन पृ० ४४।

# समाहार

पिछले अध्याय में मैंने अपने सामर्थ्यानुसार प्रसाद के नाटकों के पाठ्याधार पर उनकी नियति भावना को उद्घाटित करने का विनम्र प्रयास किया है। अपने निष्कर्षों के ताने बाने जोड़कर उनकी नाट्य नियति-दृष्टि के स्वरूप का समग्र बिम्ब उपस्थित करने से पूर्व यहाँ उन सम्भावित तथ्यों पर विचार कर लेना आवश्यक समझता हूँ जो उनकी नियतिवादिता की पृष्ठभूमि हो सकते हैं।

प्रसाद का सम्पूर्ण जीवन और साहित्य घनीभूत पीड़ा तथा करुणा कलित हृदय की वह मूक और मर्मव्यथा रूपी 'अपनी आत्मकथा' है जिसकी सीवन को उधेड़कर देखने पर नियति-सम्बन्धी कई तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं। सत्रह वर्ष की आयु से पूर्व ही प्रेरक पिता, ममतामयी माता और मित्रवत् अग्रज को मृत्यु के कराल गाल का ग्रास होते हुए देखने वाला, यौवन के उद्दाम वेग में दो दो पत्नियों की सुख सज्जा के लिए खोकर घाट पर ही रह जाने वाला, आलिंगन में आते आते मुस्करा कर भाग जाने वाली किसी अज्ञात प्रिया का सुख स्वप्न देखकर जाग जाग जाने वाला और अतीत के गर्भ में खोई न जाने कितनी स्मृतियों को दुर्दिन के आँसू में बरसा बरसा जानेवाला वह व्यक्तित्व कितना आहत और व्यथित होगा—कौन जानता है। प्रसाद की जगह कोई और होता तो सम्भवतः घबराकर जीवन से पलायन कर लेता अथवा निष्क्रिय होकर बैठ रहता। किन्तु प्रसाद ने ऐसा नहीं किया। दुःख बार-बार उनके पास आए पर या तो वे उस चट्टान रूपी से टकराकर लौट गए अथवा उस सागर-समान व्यक्तित्व में सीपी बनकर छुप-छुप गए और प्रसाद से वे अपने बनारसी रंग में झूमते रहे, गाते रहे, जीवन भर विष पी पी कर कागज के पृष्ठों पर अमृत उड़ेलते रहे। वस्तुतः विषपान ही तो जीवन की सार्थकता है और इस क्षेत्र में प्रसाद निराले व्यक्तित्व के धनी थे। डा० नगेन्द्र ने अक्षरशः ठीक लिखा है          शिव का शिवत्व इसी में है कि वे हलाहल को पान कर गए और उसको पचाकर फिर भी शिव ही बने रहे, उनका कण्ठ चाहे नीला हो गया हो, परन्तु मुख पर वही आनन्द का शान्त प्रकाश बना रहा। प्रसाद के जीवन का आदर्श यही था, वे गहरे जीवन

द्रष्टा थे। आधुनिक जीवन की विभीषिकाओं को उन्होंने देखा और सहा था, यह जहर उनके प्राणों में एक तीखी जिज्ञासा बन कर समा गया था—उनकी आत्मा जल आलोड़ित हो उठी हो ¹ और मुझे लगता है कि सम्भवत इसी आलोड़ित आत्मा ने उन्हें नियतिवाद की ओर उन्मुख किया। यह स्वाभाविक ही है कि जब चारों ओर से यातनाएं घेर लेती हैं तो व्यक्ति भाग्योन्मुख हो जाता है क्योंकि इससे किसी मात्रा तक उसे सन्तोष ही मिलता है। क्या आश्चर्य है यदि प्रसाद भी इसी तरह नियतिवादी बन हो—जीवन के वात्याचक्र और पारिवारिक विघटन से सन्तोष पाने के लिए। श्री सुमन जी के य ... मेरी इस धारणा की पुष्टि भी कर रहे हैं कौटुम्बिक एवं सामाजिक परिस्थितियों ने उन्हें घोर भाग्यवादी बना दिया था वह अपने को भाग्य की गति पर छोड़ देते थे। उनके अपने सम्बन्ध में यह भाग्य के प्रति अप्रतिरोध की भावना ही अन्तत उनकी मृत्यु का कारण हुई। ² आगे चलकर इसी नियतिवादिता ने उनके मस्तिष्क में घर कर लिया। छोटी छोटी बातों से लेकर बड़ी-बड़ी समस्याओं का समाधान भी वे इसी आधार पर कर लेते थे। डा० सहल ने इस विषय में थोड़े से ... । मैं कितना कुछ कह दिया है रायकृष्णदास जी की पहली स्त्री का जब देहान्त हुआ तो प्रसादजी ने कहा था नियति ... नहीं लेन देनी। इसी प्रकार राय साहब बतला रहे थे कि जब उनके पुत्र उत्पन्न हुआ और वे आर्थिक कठिनाइयों से चिन्तित रहने लगे तो प्रसादजी समाधान के स्वर में बोल उठे थे— आप इसके भविष्य की क्या चिन्ता करते हैं ? यह लड़का अपना भाग्य लेकर आया है। ³

ईश्वरोपासना में भी उनकी अनन्य आस्था थी। जीवन और मरण को वे ईश्वराधीन मानकर चलते थे। वह परिष्कृत सनातन धर्मी विचारों के थे। परम्परागत जो पूजा इत्यादि उनके घर में चली आती थी उसका उन्होंने बड़ी आस्था से निर्वाह किया यद्यपि वे स्वयं बैठ कर पूजा पाठ नहीं करते थे। वे ईश्वरवादी थे और नियति में उनका गम्भीर विश्वास था। वह विश्वास करते थे कि नियति जिधर खींचता ले जा रही है उधर से हटना असम्भव है। मरणासन्न होने पर भी वह किसी सैनिटोरियम में नहीं गए।

(१) डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी नाटक पृ० ७।
(२) रामनाथ सुमन कवि प्रसाद की काव्य साधना, पृ० २६८।
(३) डा० कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन पृ० १८।

थे कहते थे— 'सेनिटोरियम नहीं बचाएगा यदि ईश्वर नहीं बचा सकता।'[1] इसी प्रकार जब राजयक्ष्मा के कारण लगातार उनका शरीर शिथिल पड़ने लगा और श्री विनोदशंकर व्यास आदि उनके अनेक मित्रों ने उन्हें स्थान परिवर्तन की सलाह दी तो भी वे यही कहते रहे 'जो होना होगा वह यहीं होगा। ऐसी अवस्था में अब घर से बाहर जाने में और भी कष्ट होगा।'[2]

उपरोक्त उद्धरणों के आधार पर अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रसाद घोर नियतिवादी सिद्ध होते हैं। उनकी यह नियतिवादिता मूलतः उनके जीवन की विषम परिस्थितियों और वात्याचक्रों से उद्भूत है[3]—जैसा पहले कहा जा चुका है।

इस व्यक्तिगत नियतिवादिता का एक और कारण हो सकता है। नाटकों में मैंने सर्वत्र भाग्य, प्रारब्ध, सौभाग्य, दुर्भाग्य आदि शब्द पात्रों द्वारा साधारण बोल चाल की भाषा में प्रचुर मात्रा में व्यवहृत होते देखे हैं। इतने अधिक पात्रों द्वारा बार बार सामान्य अर्थों में भाग्यादि शब्द का प्रयोग देख कर मेरा अनुमान है कि यह सम्भवतः प्रसाद का जातिगत् अचेतन है जिसे युङ्ग ने 'रेशनल कॉम्प्लेक्स' कहा है।

किन्तु आश्चर्य की बात है कि घोर नियतिवादी प्रसाद ने अपने साहित्यिक जीवन में जिस नियतिवाद का विवेचन विश्लेषण किया है प्रथम तो वह निरा भाग्यवाद नहीं है और यदि है भी तो वह निराशावाद को जन्म नहीं देता अपितु सदैव कर्मशीलता की ओर उन्मुख होने की महती प्रेरणा देता है। उनके हर नाटक में कर्मवाद की महत्ता किसी न किसी रूप में अवश्य प्रतिपादित हुई है। और तो और नियतिवाद की दृष्टि से सर्वोत्तम नाटक 'नागयज्ञ' में स्वयं को प्रकृति का अनुचर और नियति का दास कहनेवाला जनमेजय उत्तंक से कर्म का गुण गान सुनकर पुरुषार्थ का उद्घोष करता है। 'अब एक

(१) कृष्ण देव, प्रसाद गौड़ 'प्रसाद का व्यक्तित्व' संसार साप्ताहिक (प्रसाद अंक) १८ फरवरी १९४१।

(२) विनोद शंकर व्यास प्रसाद और उनका साहित्य पृ० ३८।

(३) उनकी नियति कल्पना बहुत कुछ वैयक्तिक है वह किसी क्रमागत सिद्धांत की प्रतिरूप नहीं।

—डॉ० नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद पृ० १०८।

घोर कर्म-समुद्र में कूद पड़ेगा चाहे जो कुछ हो। आलस्य अब मुझे अकर्मण्य नहीं बना सकेगा। उतक भी मुक्त कंठ से कर्म की महत्ता प्रतिपादित करता है नियति का क्रीड़ा कन्दुक नीचा ऊंचा होता हुआ अपने स्थान पर पहुँच ही जाएगा। चिन्ता क्या है केवल कर्म करते रहना चाहिए। यही नहीं मनुष्य को प्रकृति का अनुचर और नियति का दास बताने से केवल एक क्षण पहले स्वयं जरत्कारु कहता है कर्मफल तो स्वयं समीप आते हैं। उनसे भागकर कोई बच नहीं सकता। और तो और प्रसाद के सबसे बड़े नियतिवादी पात्र स्वयं वेदव्यास भी न तो निश्चेष्ट होकर बैठते हैं और न ही इस प्रकार का उपदेश ही देते हैं।[१] अतः अपने साहित्यिक जीवन में प्रसाद नियतिवादी होते हुए भी बड़े से बड़े कर्मवादी आशावादी और आस्थावादी नाटककार सिद्ध किए जा सकते हैं।[२]

## स्वभावतः नियतिवादी सिद्धान्ततः कर्मवादी

प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करते समय मेरे मन में एक बहुत बड़ा विकल्प उठ खड़ा हुआ कि अपने व्यक्तिगत जीवन में इतना कट्टर भाग्यवादी होकर भी यह महान कलाकार अपने साहित्यिक जीवन में ऐसा क्यों नहीं ? बहुत सोचने समझने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जहाँ जीवन की विपरीत परिस्थितियों और घात प्रतिघातों ने उसे स्वभावतः भाग्यवादी बना दिया वहाँ वेद वेदांग उपनिषद् पुराण रामायण महाभारत और गीता आदि के गहन अध्ययन ने सिद्धान्ततः उसे कर्मवादी बना दिया होगा। इस दृष्टि से प्रसाद को मैं स्वभावतः भाग्यवादी और सिद्धान्ततः कर्मवादी नाटककार समझता हूँ क्योंकि साहित्य में तो उन्होंने हृदय पर बुद्धि की विजय दिखलाई किन्तु अपने व्यक्तिगत परिवेश में उनकी बुद्धि को बार-बार हृदय से हार खानी पड़ी मैं दावा तो नहीं करता पर मुझे लगता है, यही सत्य है और प्रसाद जैसे सत्यमुखी कलाकार के लिए स्वाभाविक भी। ऐसा मान लेने पर मुझे मेरे विकल्प का सुन्दर समाधान भी मिल जाता है।

इस आलोक में अब मैं अपने निष्कर्षों के सम्बन्ध सूत्र जोड़कर प्रसाद के नाटकों में कालक्रमानुसार नियति का स्वरूप निर्धारित कर सकने में स्वयं को समर्थ पा रहा हूँ —

(१) डा॰ कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन पृ० २७।

(२) प्रसाद का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद से भिन्न है।

—प्रा॰ नन्ददुलारे वाजपेयी जयशंकर प्रसाद पृ० १०७।

| | |
|---|---|
| (१) सज्जन | प्रमुखतः कर्म एवं पुरुषार्थ की व्यंजना किन्तु युधिष्ठिर दैववादी। |
| (२) प्रायश्चित | कर्मवाद जयचन्द जैसा अधम पात्र भी कुकर्मों को धोने के लिए प्रायश्चित करता है। |
| (३) करुणालय | पूर्णतः ऋतवादी प्रभाव किन्तु कर्मवाद मानव कल्याणवाद और करुणावाद भी। |
| (४) राज्यश्री | प्रमुखतः दुःखवाद (ऋतवाद) कर्मवाद और पूर्वनिर्दिष्टवाद भी। |
| (५) विशाख | कर्मवाद का सुन्दर विवेचन प्रेमानन्द निष्काम कर्मयोगी, विशाख भी उत्तरार्ध में कर्मवादी। |
| (६) अजातशत्रु | नियतिवादी तथा कर्मवादी पात्रों में द्वन्द्व, परिणति कर्मवाद में दुःखवाद से भी ओतप्रोत। |
| (७) जनमेजय का नागयज्ञ | 'नियति' की सर्वाधिक चर्चा। उसका विश्व नियामिका शक्ति तथा चेतन सत्तापरक रूप। मानववाद कर्मवाद प्राप्ति। |
| (८) कामना | प्रतीकवादी नाटक। प्रकारान्तर से ऋतवाद की ध्वनि। कर्मवाद भी। |
| (९) स्कन्दगुप्त | नियतिवाद और कर्मवाद का द्वन्द्व। कर्मवाद की पुष्टि। एक-आध स्थलों पर समय (भाग्य) का ग्रीक दार्शनिकों जैसा प्रयोग भी। |
| (१०) चन्द्रगुप्त | अधिकांश पात्रों द्वारा नियति भावना का प्रकटीकरण किन्तु सभी पुरुषार्थवादी। पूर्वनिर्धारणवाद की व्यंजना। |
| (११) एकघूँट | प्रतीकात्मक नाटक। आनन्दवाद का प्रमुखस्वर (विश्वकल्याणवाद) कर्म सम्बन्धी व्यंजना। |
| (१२) ध्रुवस्वामिनी | पूर्वार्ध में नियतिवादिता। उत्तरार्ध में स्वतः निर्दिष्टवाद। पुरुषार्थ एवं कर्मवाद भी। |

उपरोक्त निष्कर्ष बिन्दुओं का तारतम्य स्थापित करने पर मेरे दृष्टि-पथ में प्रसाद के नाटकों की नियति सम्बन्धी आठ मुखाकृतियाँ (Facets) एकदम स्पष्ट होकर उभर आती हैं, जो क्रमबद्ध रूप में इस प्रकार रखी जा सकती हैं —

(१) ऋतवाद
(२) कर्मवाद
(३) नियतिवाद
(४) नियति और शिव-कल्याणवाद
(५) नियति और नियामक
(६) दैववाद अथवा प्रारब्धवाद
(७) पूर्व निर्दिष्टवाद
(८) उद्देश्यवाद

ऋतवाद —

ऋतवाद के विषय में द्वितीय अध्याय में विस्तार पूर्वक बहुत-कुछ कहा जा चुका है (देखिए पृ २३) ऋग्वेद में उस अखंड नियम पद्धति को 'ऋत' की संज्ञा दी गई है जो मूलतः नैतिक सिद्धांतों पर आधारित है और कार्य कारण परम्परा द्वारा इस ब्रह्माण्ड का संचालन कर रही है। विश्व में सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाला ऋत ही है और यही विश्व की छोटी से छोटी वस्तुओं से लेकर बड़ी से बड़ी चीज़ को प्रकृतिस्थ रखता है। इसके अधिष्ठाता देव वरुण हैं जो समस्त प्राणियों के कार्य-व्यापार पर कड़ी दृष्टि रखते हैं तथा अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा फल देते हैं। ऋत अपरिहार्य नियम-परम्परा है जो विश्व के अणु अणु में व्याप्त है।

प्रसाद जी ने जिस रूप में नियति की सत्ता को स्वीकार किया है वह ऋतवाद के एकदम समकक्ष है। यद्यपि यत्र तत्र नियति का प्रयोग प्रसाद ने 'भाग्य' के अर्थ में भी किया है पर इन स्थलों को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर नियति अपरिहार्य नियम परम्परा के ही अर्थ में प्रयुक्त हुई है। यह नियम पद्धति कार्य कारण परम्परा को लेकर कार्य करने वाली एसी अखंड व्यवस्था के रूप में प्रसाद द्वारा चित्रित हुई है जो सर्वत्र समरूप से स्थित है तथा छोटे से छोटे तिनके से लेकर उदधि की उत्ताल तरंगों अनन्त उल्का पिंडों तक का नियन्त्रण और नियमन करती है। प्रसाद जी ने अनेक स्थलों पर अपने पात्रों के मुख से इस अनन्त नियम पद्धति का उद्घाटन करवाया है। कामना में विलास का यह कथन मेरी इस बात की पुष्टि करता है नियम अवश्य हैं। ऐसे नील नभ में अनन्त उल्का पिंड उनका क्रम से उदय और अस्त होना दिन के बाद नीरव निशीथ फिर दिवस पर ज्योति र्मयी राका और कुहू ऋतुओं का चक्र और निःसन्देह शिशिर के बाद उद्दाम

यौवन तथ क्षाम भरी हुई जरा—य सब क्या नियम नही हैं ? करुणालय' का तो समस्त घटना विधान ऋत के अधिष्ठाता देव वरुण के प्रभाव से श्रोत प्रोत है। ऋत की अनभिज्ञता म इस नाटक की रूप रेखा भी पाठक के मानस पर स्पष्ट होनी लगभग असम्भव है। प्रसाद की नियति के सदभ म आचाय नन्ददुलार वाजपयी श्री जगन्नाथ प्रसाद शर्मा और डा० द्वारिका प्रसाद की ये पंक्तियाँ अमन मरी उपरोक्त मान्यता की बहुत दूर तक पुष्टि करते हैं —

(क) प्रसादजी की दृष्टि म प्रकृति का नियमन और विश्व का सतुलन करने वाली शक्ति नियति है जो मानव अतिवादों की रोकथाम करती है और विश्व का सन्तुलित विकास करन म सहायक होता है। [१]

(ख) नियति को अपन सिद्धान्त के अनुसार प्रसाद ने अखिल ब्रह्माड की नियन्त्रण कारिका शक्ति कहा है। इसी अथ का प्रतिपादन उनके नाटकों म भी होता है।' [२]

(ग) प्रसाद जी क नियतिवाद म नियति परमात्मा का एक एसा नियामिका शक्ति है जो समस्त विश्व का शासन अथवा नियन्त्रण करती है [३]

अपन निष्कर्षों और उपरोक्त विद्वानो के इन उद्धरणो क आधार पर मरी यह दृढ मा यता बनती है कि प्रसाद जी की नियति भावना मूलत वदिक ऋत से ही प्रभावित है। यद्यपि आग चलकर ज्यो ज्यो प्रसाद के जीवन दशन का विकास होता गया त्यो त्यो उसम कई अन्य प्रभाव भी सम्मिलित हो गए। प्रसाद जी की नियति मूलत ऋतवादी ही है—मरी इस मान्यता की पुष्टि श्रीमती महादेवी वर्मा न भी की है —

---

(१) आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी (कामायनी का दाशनिक निरूपण) जयशकर प्रसाद जीवन दशन कला और कृतित्व (सं० महावीर अधिकारी) पृ० ६०।

(२) डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा प्रसाद क नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन पृ० १६५।

(३) डा० द्वारिका प्रसाद कामायनी म काव्य सस्कृति और दशन पृ० ४१०।

पिछली बार जब इलाहाबाद में श्रीमती महादेवी वर्मा से मिलना हुआ तो नियति पर चर्चा चल पड़ी। उन्होंने कहा कि प्रसाद जी की नियति वास्तव में ऋत का रूप है वह भाग्यवाद नहीं।[१]

कर्मवाद —

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत मैं स्पष्ट कर चुका हूं कि दैविक ऋतवाद ने ही आगे चलकर कर्मवाद को जन्म दिया ( देखिए पृ० २५ )। इस आत्मवाद से प्रसादजी मूलतः नियति भावना में कर्मवाद का भी विशद् विवेचन उपस्थित हुआ है। इसी अध्याय में पीछे दिए गए नाटकों की क्रमिक सूची से भी यह सिद्ध होता है कि उनके समस्त नाटकों पर इस कर्मवाद की गहरी छाप है। इस कर्मवाद के वैज्ञानिक सिद्धान्त ने ही उनकी नियति भावना में भाग्य के उस रूप को प्रविष्ट नहीं होने दिया जिसकी कल्पना ग्रीक वासियों ने की है और जो कार्य कारण परम्परा से हीन होकर अन्धा चित्रित किया गया है। कर्मवाद की जितनी सुन्दर व्याख्या हमारे देश में हुई है उतनी कदाचित ही अन्य किसी देश में हुई हो। यह कर्म परम्परा जन्मान्तरवाद को लेकर चलती है और प्रारब्ध संचित तथा क्रियमाण कर्मों के द्वारा मनुष्य के शुभाशुभ फल प्राप्ति का समर्थन करती है।

कर्मवाद की यह दृढ़ मान्यता है कि मनुष्यों को अपने कर्मों के अनुसार फल मिलता है इस विषय में प्रायः सभी दर्शन एकमत हैं। किन्तु कभी कभी जब हम सज्जनों को कष्ट उठाते हुए तथा दुर्जनों को सुखी देखते हैं तो इन वैषम्य के कारण कर्म विषयक कारण कार्य सिद्धांत की मान्यता में कुछ क्षण के लिए हमें सन्देह होने लगता है। किन्तु शंकराचार्य ने वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति सूत्र के भाष्य में कहा है कि ईश्वर किसी की अपेक्षा करके सृष्टि रचना में प्रवृत्त नहीं होता। वह जीव के संचित तथा अदृष्ट कर्मों को लक्ष्य में रखकर ही वैषम्य की सृष्टि करता है—जीवन के कर्म ही प्रकृत कारण हैं—ईश्वर तो निमित्त मात्र है। इस प्रकार कर्मवाद हमारे दर्शनों का वैज्ञानिक सिद्धान्त है—भाग्यवाद हमारे देश का दर्शन नहीं।

योगवासिष्ठकार की उपरोक्त उक्ति जहाँ कर्मवाद की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करती है वहाँ इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कर्मवाद का भाग्यवाद से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध करना भयंकर अनर्थ होगा। अति विनम्रता

(१) डा० कन्हैयालाल सहल मूल्यांकन पृ० ४०।

पूर्वक कीथ महोदय के इस कथन को मैं भ्रामक की संज्ञा देना चाहूँगा कि कर्म भावना मूलतः भाग्यवादी है और भाग्यवाद नैतिक उन्नति के लिए सामान्य जन के हेतु प्रेरक शक्ति का काम नहीं करता।[1] क्योंकि हमारे यहाँ का कर्मवाद वैज्ञानिक है और जन्म जन्मान्तर कर्म फलों को लेकर अग्रसर होता है। अतः उसे किसी प्रकार से भी उस भाग्यवाद की संज्ञा नहीं दी जा सकती जो अंधा और क्रूर चित्रित किया गया है।

पहले कह चुका हूँ कि सज्जन से लेकर ध्रुवस्वामिनी तक प्रसाद के सभी नाटक कर्मवाद से ओतप्रोत हैं। सज्जन में यह कर्मवाद अपनी साधारण सी ध्वनि देकर ही रह जाता है। प्रायश्चित्त में यह सज्जन की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट होकर पहले आकाशवाणी [illegible] रूप में फिर जयचन्द के द्वारा हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। "अपने अपने लगाए हुए विष वृक्ष के फल को चख तथा मैंने प्रायश्चित्त करने की प्रतिज्ञा की है।" करुणालय में वरुण के स्तुतिगान द्वारा कर्मवाद का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। रोहित इन्द्र से यही वरदान माँगता है कि वह "कर्मपथ में न कभी यह भीत हो।" राज्यश्री में भी नायिका का पुरुषार्थ कर्मवाद का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। सुरमा का चरित्र भी कर्मवादी है। विशाख में नाटक और नरदत्त दोनों ही पहले नियति का गुणगान करते हैं पर प्रेमानन्द से सदस्य कर्मयोग का आदर्श पाकर दोनों ही कर्मवादी बन जाते हैं। प्रेमानन्द प्रसाद के कर्मयोगी पात्रों में चिरस्मरणीय है। अजातशत्रु में "जिन" कर्म पथ का प्राण-पण से प्रशस्त करने में लगा हुआ है। वह नियति की डोरी पकड़कर भी कर्म क्षेत्र में छलाँग लगाने को तत्पर है। जनमेजय में यद्यपि नाटककार ने प्रायः नियति नटी का प्रताप छाया हुआ है पर कृष्ण अर्जुन को सन्देश देते हैं "पुरुषार्थ करो जनता तुम्हारा।" उत्तंक का सम्पूर्ण चरित्र नाटक पर कर्म की सुन्दर चित्रकारी कर देता है। उसके तर्कों में इतना बल है कि नियतिवादी जनमेजय भी कर्मपथ पर अग्रसर होकर ब्रह्महत्या का पाप मिटाने के लिए यज्ञानुष्ठान करता है। जरत्कारु का कथन है कि कर्म-फल किसी का पीछा नहीं छोड़ता। नेपथ्य गीत

(1) The conception of Karma is essentially fatalistic and fatalism is not for a normal mind a good incentive to moral progress.

—A. B. Keith: The Religion & Philosophy of the Veda and the Upanishads, p. 506

से भी कर्म कर्म चेतनता है का उद्घोष सुनाई पड़ता है। कामना का विलास भी पुरुषार्थी है। स्कन्दगुप्त में अनन्तदेवी अपनी नियति का पथ स्वयं चलने को उद्यत है। अपने को विश्व नियामक के हाथ का खिलौना समझने वाला स्कंद भी अंत तक कर्म पथ पर अडिग रूप से डटा रहता है। चक्रपालित भी देश रक्षार्थ स्कन्द के साथ उसके कार्यों में हर क्षण सहयोग देकर अपनी पुरुषार्थ प्रियता का प्रमाण देता है। भटार्क और मातृगुप्त तो पूर्णत कर्मवादी हैं। चन्द्रगुप्त में ऐसा कोई भी पात्र नहीं जो पुरुषार्थी की सम्मानपूर्ण का अधिकारी न हो। चाणक्य पौरव राजकुमार को कर्म क्षेत्र में पाप कर में लड़खड़ाने के लिए सावधान करता है। चन्द्रगुप्त के लिए जागरण का ही प्रथम क्षेत्र में अवतरित होना है। पर्वतक बर भाग्य से इसी ढंग भी कर लेता है और आम्भीक तथा सिंहरण का जीवन तो तलवार की धार पर खेलना ही है। चाणक्य सम्भवत प्रसाद का सबसे शक्तिवान पात्र है जो भयंकर से भयंकर परिस्थितियों में भी विचलित होने का या निष्क्रियता का भाव भी हृदय में नहीं जाग्रत होने देता। चन्द्रगुप्त का समग्र प्रभाव इसीलिए पुरुषार्थ और कर्म की महत्ता की छाप पाठकों पर छोड़ जाता है। एक घूँट में मुख्यत प्रतीक-योजना की ओर प्रसादजी उन्मुख रहे हैं। इसीलिए दर्शन पक्ष कुछ शिथिल सा हो गया है फिर भी कहां कहीं कर्म की ध्वनि देखी जा सकती है। ध्रुवस्वामिनी जो कि प्रसाद की अन्तिम नाट्य-कृति है—में भी प्रसाद द्वारा पुरुषार्थ और स्वत निर्णयवाद की पुष्टि हुई है। पूर्वार्ध में नायिका ने परिस्थितियों के प्रति अपने को पूर्णत समर्पित कर रखा है पर उत्तरार्ध में वह अपनी अदम्य इच्छा शक्ति का स्मरणीय उदाहरण प्रस्तुत करती है। मंदाकिनी का गीत (पृ ३३) भी उसकी पुरुषार्थवादिता और सुदृढ़ कर्म-निष्ठा का उद्घोषक है। शकराज तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता है।

अत प्रसाद का कोई नाटक भी ऐसा नहीं जिससे कर्मवाद की प्रेरणा ग्रहण न की जा सकती हो। वस्तुत कर्मवादिता प्रसाद के साहित्य की आधार शिला कही जा सकती है। आचार्य वाजपेयी जी लिखते हैं, प्रसादजी कर्म मार्ग के विरोधी नहीं थे। वे मननशील अभय कर्म का संदेश देते हैं।[१]

(१) आ० नन्ददुलारे वाजपेयी (कामायनी का दार्शनिक निरूपण) जयशंकर प्रसाद जीवन दर्शन कला और कृतित्व (सं महावीर अधिकारी) पृ० ६०।

नियतिवाद —

प्रसाद का नियतिवाद व्यापक कैनवास पर चित्रित हुआ है। उनकी नियति भावना की प्रथम मुखाकृति ऋतवाद के विवेचन में मैंने केवल उसके एक ही स्वरूप—अर्थात् कार्य-कारण परम्परा जन्य नियम बद्धता को ही विवेच्य विषय माना है। किन्तु मुझे उसके दो अन्य रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार उनकी 'नियति नटी' को तीन परिवेशों में प्रस्तुत इस प्रकार रखना चाहूंगा —

(१) 'नियम' के अर्थ में नियति।
(२) चेतन सत्ता के रूप में नियति।
(३) भाग्य के अर्थ में नियति।

प्रथम बिन्दु का विवेचन पीछे हो चुका है अतः यहाँ केवल दूसरे और तीसरे बिन्दुओं पर ही विचार करना संगत होगा। अनेक स्थलों पर नियम' अदृष्ट और नियति शब्दों को मानवीकृत रूप देकर प्रसाद ने इस विश्व का नियामक किसी चेतन सत्ता को विश्व का मूलाधार माना है। विलास के शब्दों में ईश्वर है और वह सबके कर्म देखता है। नास्तिक्य यह दलन को उत्सुक है कि भाग्य उसे किस ओर खींचता है। अदृष्ट कहे तो भी सुरमा उसकी बात मानने को तैयार नहीं। सुरमा इस अदृष्ट का यन्त्र है और वह यन्त्र उससे कोई काम कराना चाहता है। स्कन्दगुप्त भी किसी नटखटनागरी बालक के हाथों का खिलौना है। विजय के शब्दों में अदृष्ट ने ही उस रक्षित रत्नगृह को बचाया है —इन समस्त वाक्यांशों से अस्पष्ट भाग्य आदि का मानवीकृत रूप (कर्ता के रूप में) हमारे सम्मुख आता है। अतः ज्ञात होता है कि प्रसाद की नियतिभावना में चेतन-सत्ता का भी अस्तित्व है। आचार्य नन्ददुलारे जी भी इस कथन की सत्यता को स्वीकार करते हैं ' नियति को प्रसाद जी सचेतन प्रकृति का कार्य कलाप मानते हैं। सचेतन प्रकृति नियति के रूप में ही सक्रिय होती है।[१]

भाग्य के अर्थ में भी नियति का प्रयोग प्रसाद ने किया है। कामना कहती है यदि ये नियम हैं तो मैं कह सकती हूँ कि ये नियम न होकर नियति बन जाते हैं। असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं कामना द्वारा यहाँ नियति का भाग्य के अर्थ में प्रयोग द्रष्टव्य है। किन्तु ऐसे स्थल नाटकों में कम हो आए हैं।

---

[१] (१) आ० नन्ददुलारे वाजपेयी जयशंकर प्रसाद पृ० १०७।

## नियति और विश्वकल्याणवाद —

प्रसाद की नियति का विश्वकल्याणमय रूप उस और अधिक महत्व का विषय बना देता है। प्रसाद जी की यह दृढ़ मान्यता रही कि विश्व में ये सारे कार्यकलाप विश्व के कल्याणार्थ ही हो रहे हैं। प्रसाद की अनुपम-पात्र सृष्टि के उदाहरण नागयज्ञ के वेदव्यास कहते हैं विश्वात्मा सब का कल्याण करता है। नियति के पीछे भी वे विश्व भर के हित का रहस्य मानते हैं।[१] करुणालय के विश्वामित्र भी कहते हैं। वह प्रकाशमय देव न देता दुःख है।' इस प्रकार प्रसाद की नियति भावना सृजनात्मक है और उसमें विश्वहित का तथ्य निहित है। उनका विश्वास था कि विश्व नियामिका शक्ति किसी को भी कष्ट नहीं देती। वस्तुतः यह ठीक भी है। कई बार मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में उत्पात से घबराकर ईश्वर को क्रूर अथवा निर्दयी सोचने लगता है। यह सर्वथा एकांगी विचार धारा ही कही जाएगी। विश्व नियामिका शक्ति यदि क्रूर निर्दयी अथवा ध्वंसात्मक रूप धारण कर लेगी तो मनुष्य जीवन में रह ही क्या जाएगा। प्रेम पथिक में प्रसाद स्वयं लिखते हैं

> दुःख दलकर अपना हो।
> मन समझो सब दुःखी जगत का मत नांदन दो ईश्वर का।
> शिव समष्टि का नाना इच्छा उसकी पूरी होती है।

## नियति और नियामक —

कई स्थानों पर प्रसाद ने नियम और नियामक में पार्थक्य स्थापित किया है। वासवी का कथन है प्रपवाद नियम पर है या नियामक पर जिससे सिद्ध है कि नियम और नियामक दो वस्तुएं हैं। नियम विश्व का संचालन करने वाली कार्यकारण परम्परा है और कोई इसमें भी इतर सत्ता है जो इसका संचालन करती है। प्रसाद विश्व के पीछे चेतन सत्ता को माननेवाले कलाकार थे अतः इस सत्ता रूप में उन्होंने ईश्वर को ही स्वीकार किया। स्कंदगुप्त के मुंह से वे कहलवाते हैं मैं कुछ नहीं हूं—परमात्मा का अमोघ अस्त्र हूं। इस प्रकार सिद्ध है कि प्रसाद कार्यकारण परम्परा युक्त इस नियम पद्धति के नियामक रूप में ईश्वर की सत्ता पर आस्था रखते थे।

---

(१) तुलनीय —

There is no error in the Eternal Plan All things are working for the final good of man

—Wordsworth

दववाद अथवा प्रारब्धवाद —

मुख्यत प्रसाद कार्य-कारण-परम्परा को लेकर प्रवृत्त होने वाली नियम पद्धति के पुजारी नियतवादी थे। किन्तु नाटकों का अध्ययन करते समय कुछ स्थल ऐसे भी आए जहा मुझे उनकी नियति का स्वरूप दववादी अथवा भाग्यवादी सा लगा। स्कन्दगुप्त में धातुसेन का यह कथन ऐसा ही एक स्थल है— समय पुरुष स्त्री की गेंद लेकर खेलता हाथों से खेलता है ये पत्तियाँ पत्ते ही मेरे सम्मुख श्रीर दासियों के उस 'भाग्य' का चित्र आ उपस्थित होता है जिसमे मानव की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। जिस प्रकार एक कुशल बाजीगर ने गेंद लेकर उन्हें अपनी इच्छानुसार हाथों से नचाता है वस ही यदि समय रूपी भाग्य स्त्री पुरुष की गेंद लेकर कदुक क्रीडा करता है तो फिर इससे बढ़कर और क्या भाग्यवादिता होगी ?[१] प्रसाद जी का उमरखैयाम लिखित एक ऐसा ही रुबाई बहुत पसन्द थी—यह जानकर मेरी यह धारणा और भी पुष्ट हो गई कि प्रसाद की नियति भावना का एक स्वरूप भाग्यवादी भी है। यहाँ निश्चय ही उनके साहित्य में उनका व्यक्ति पक्ष उभर आया है।

स्कन्दगुप्त भी एक स्थल पर स्वयं को अदृष्ट-सत्ता के हाथों मे खिलौना कहकर सबोधित करता है। मानो उसकी स्वयं की कोई सत्ता ही न हो। यद्यपि स्कद की यह उक्ति क्षणिक भावावेग का ही द्योतन करता है तथापि इस प्रकार की उक्तियों के पीछे प्रसाद के व्यक्तिगत जीवन की भाग्याश्रितता का आभास तो हमे मिल ही जाता है।

अनेक स्थलों पर कर्मवीर पात्रों के मुख से इसी प्रकार की उक्तियाँ सुनते सुनते मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रसाद की अन्तरात्मा मे 'भाग्य' और पुरुषार्थ का द्वन्द्व अबाध गति से होता रहा होगा—जिसे उन्होंने समय-समय पर अपने पात्रों मे दर्शन करना स्थिर किया। योगवाशिष्ठकार ने भाग्य और पुरुषार्थ का द्वन्द्व इन शब्दों मे व्यक्त किया है —

---

(१) तुलनीय —

As flies to wanton boys are we to the gods They kill us for their sport

Shakespeare King Lear, Act 4 I

**द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौ समासमौ ।**
**प्राक्तनश्चैहिकश्चैव शाम्यत्यत्राल्पवीर्यवान् ॥**[१]

अर्थात् पूर्वजन्म का पुरुषार्थ (भाग्य) और इस जन्म का पुरुषार्थ कभी समशक्ति और कभी कभी असम शक्ति होकर दो मेढ़ों की तरह परस्पर युद्ध करते हैं। उनमें से जो अल्प शक्तिवाला होता है वह हार खा जाता है।

और मुझे अनुभूति होती है कि प्रसाद के मन में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व में 'भाग्य' रूपी उस मेढ़े को मात खानी पड़ी जो उनके कर्म रूपी मेढ़े के सम्मुख आया। तभी तो उनके ही नाटकों में अन्ततोगत्वा नियतिवादी पात्र पुरुषार्थवादी और कर्मवादी बन जाते हैं। विशाख का नायक और ध्रुवस्वामिनी की नायिका इसके सुन्दरतम उदाहरण हैं।

अतः नाटकों में यत्र तत्र भाग्यवाद की श्रेणी में आने वाले सन्दर्भों के होते हुए भी हम प्रसाद के नाटकों में न तो उन्हें भाग्यवादी कह सकते हैं और न ही उनके नाटकों को। वस्तुस्थिति यह है कि प्रसाद के नाटकों में सामान्यतः नियति उस भाग्य का पर्याय नहीं है जिसे और लोगों ने अंधा और क्रूर चित्रित किया है। प्रसाद ने इस जीवन को कर्म रंगस्थल कहा है। एपिक्टेटस की तरह उन्होंने मनुष्य को विश्व रंगमंच पर सर्वथा भाग्याश्रित पात्र कहकर चित्रित नहीं किया है। इस सम्बन्ध में मैं एपिक्टेटस की निम्नलिखित पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना आवश्यक समझता हूँ —

Remember you are an acto in a drama of such a kind as the author God plea es to make it If short of a short one if long of a long one If it be His pleasure that you should be a poor man a cripple a governor, or a private person see that you act it naturally For this is your busi ness-to act well the part assigned to you to choose it is another s business

—Epictetus

—याद रखो कि तुम उस नाटक में एक ऐसे अभिनेता हो जैसा ईश्वर तुम्हें अभिनेता के रूप में रखना चाहते हैं। अगर वह तुम्हें निर्धन पंगु गवर्नर या सामान्य व्यक्ति रखना चाहें तो भी तुम स्वाभाविक रूप से अपना अभिनय

(१) योगवासिष्ठ २ ५ ५ ।

करो क्योंकि जो अंश अभिनय के लिए तुम्हें दिया गया है उसे तुम पूरा करो कौन सा अभिनय तुम्हें मिलेगा, इसके चुनाव का अधिकार तुम्हारा नहीं।
—एपिक्टस

एपिक्टस की उपरोक्त उक्ति यह दर्शाती है कि मनुष्य ईश्वर के हाथों की कठपुतली है और इस विश्व रंगमंच पर उसका कोई भी अस्तित्व नहीं है। यह अंधा भाग्यवाद है जिसका भारतीय जन जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। हमारे यहाँ प्रारब्ध कर्मों को ही भाग्य की संज्ञा दी गई है कर्म सिद्धांत का यही मूलमंत्र है। यही प्रारब्धवाद प्रसाद के नाटकों में इतस्ततः बिखरा हुआ पड़ा है इस निराशाजन्य भाग्यवाद समझना गलत होगा। इस दृष्टि से प्रसाद निराले नियतिवादी हैं उनके अपने निश्चित सिद्धांत हैं और उनकी अपनी मौलिक देन भी। पश्चिम का कोई नियतिवादी कलाकार शायद ही इनकी तुलना में आ सके। क्योंकि पश्चिम में कर्मयुक्त 'प्रारब्धवाद' कभी रहा ही नहीं और यही कर्मवाद प्रसाद की नियति भावना का मेरुदण्ड है। पाश्चात्य नियतिवादियों में हार्डी का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जाता है किन्तु हार्डी और प्रसाद की तुलना करने पर दोनों में कोई भी साम्य कदाचित ही दीख पड़ेगा 'किन्तु प्रसाद जी का नियतिवाद विख्यात उपन्यासकार टामस हार्डी के नियतिवाद से सर्वथा भिन्न है। हार्डी का नियतिवाद मानव को सिर धुनने के लिए छोड़ देता है जबकि प्रसाद का कर्म में जुटा देता है। प्रथम निवृत्ति मार्ग का द्वार बन्द कर देता है दूसरा प्रवृत्ति मार्ग का मैदान बुहार देता है।'[१]

पश्चिम में निराशाजन्य भाग्यवाद क्यों उद्भूत हुआ और हमारे यहाँ कर्म प्रधान तथा आशाजन्य नियति भावना क्या प्रकार प्रसार पा गई इसकी बड़ी ही सुन्दर और ऐतिहासिक विवेचना स्वयं प्रसाद जी ने प्रस्तुत की है—

वर्तमान युग बुद्धिवादी है आपाततः उसे दुःख को प्रत्यक्ष सत्य मान लेना पड़ा है उसके लिए संघर्ष करना अनिवार्य-सा है। किन्तु इसमें एक बात और भी है। पश्चिम को उपनिवेश बनाने वाले आर्यों ने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए मानवीय भावनाएं विशेष परिस्थिति उत्पन्न कर देती है। उन परिस्थितियों से व्यक्ति अपना सामंजस्य नहीं कर पाता। कदाचित् दुर्गम भूभागों में उपनिवेशों की खोज में उन लोगों ने अपने को विपरीत दशा में

(१) प्रो० राम राजपाल द्विवेदी प्रसाद एवं पन्त का तुलनात्मक विवेचन पृ० २७७।

ही भाग्य से लड़ते हुए पाया। उन लोगों ने जीवन की इस कठिनाई पर ध्यान देने से पाराण इस जीवन को (ट्रजडी) समय ही समझा। और यह उन की मनुष्यता की पुकार थी आजीवन सहने के लिए। और और रामन लोगों को बुद्धिवाद भाग्य से और उसके द्वारा उत्पन्न दुःखपूर्णता से संघर्ष करने के लिए अधिक अग्रसर करता रहा। उन्हें गहायता के लिए गडबड़ होने पर भी व्यक्तित्व के पुरुषार्थ के विकास के लिए मुक्त अवसर देता रहा। इसी लिए उनका बुद्धिवाद उनकी दुःख भावना के द्वारा अनुप्राणित रहा। इसी को साहित्य में उन लोगों ने प्रधानता दी। यह भाग्य या नियति की विजय थी।

परन्तु अपने घर में सुव्यवस्थित रहनेवाले आर्यों के लिए यह आवश्यक न था। यद्यपि उनके एक दल ने संसार में नश्वरवाद बुद्धिवाद और दुःख सिद्धान्त का प्रचार किया जो विशुद्ध दार्शनिक हो रहा। साहित्य में उसे स्वीकार नहीं किया गया। हाँ यह एक प्रकार का विद्रोह ही माना गया। भारतीय आर्यों को निराशा न थी। वरन् रस था उसमें दया सहानुभूति की कल्पना से अधिक थी रसानुभूति। उन्होंने प्रत्यक्ष भावना में अभेद निर्विकार आनन्द लेने में अधिक सुख माना। १

प्रसाद जी की ये पंक्तियाँ जहाँ प्राच्य और पाश्चात्य नियति भावना की पृष्ठभूमि का स्पष्ट दिग्दर्शन कराती हैं वहीं यह भी सिद्ध कर देती हैं कि इन पंक्तियों को लिखने वाला महान कलाकार कभी भी उस अंध भाग्य को नाटकों में चित्रित नहीं करेगा जो निराशा और दुःखमय जीवन का रोना धोना सुनाती है। अतः प्रसाद जी की नियति भावना भाग्यवादी परिवेश में नहीं देखी जानी चाहिए। प्रसाद जी की नियति के सम्बन्ध में डा० सहल का यह कथन अक्षरशः सत्य है वह विश्व की प्रचण्ड नियामिका शक्ति है और ऐसी नर्तकी (नट) है जिसका विराट रूप योगवासिष्ठकार ने हमें दिखलाया। इस प्रकार का नियतिवाद न भाग्यवाद अथवा दैववाद है और न किसी प्रकार के पलायन का प्रचार ही। २

(१) जयशंकर प्रसाद काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध (स० आ० नन्ददुलारे वाजपेयी) पृ ८३–८४

(२) डा० कन्हैयालाल सहल कामायनी दर्शन (नियतिवाद और कामायनी) पृ १३१।

## पूर्वनिर्दिष्टवाद

नाटकों में ऐसे अनेक स्थल आए हैं जहाँ पहले से किसी निश्चित घटना की अपरिहार्यता का बोध होता है। 'राज्यश्री' की नायिका जब दुःखवादी स्वरों में आह भरती है — आह जितनी साँसें चलती हैं वे तो चलकर ही रुकेंगी तो ऐसा भान होता है मानो किसी निष्ठुर गणितज्ञ ने पहले ही गणना करके उसके जीवन पर साँसों का कड़ा पहरा लगा दिया हो—ऐसा प्रतिबन्ध लगा दिया हो जिसमें एक निश्चित श्वास तक न न तो उसे मरने का ही अधिकार दिया हो और न ही उसके बाद क्षण भर जीने का ही। नागयन के जीवक को भी इस विश्वास है कि जो होना होगा वह तो होगा ही —जो यह सिद्ध करता है कि भविष्य की घटनाएँ पूर्व निर्धारित और अनुलंघनीय होती हैं। इसी नाटक के प्रमुख पात्र वेदव्यास भी क्रान्तदर्शी हैं और भविष्य के आवरण को चीरकर वे सब कुछ जान सकने में समर्थ हैं जो आने वाला है। तभी तो वे जनमेजय से कहते हैं सम्राट तुमने मुझसे एक दिन पूछा था कि क्या भविष्य है। देखो नियति का चक्र मैंने कहा था कि यज्ञ में विघ्न होगा। और वस्तुतः विघ्न हुआ भी। चन्द्रगुप्त का चाणक्य इस पूर्वनिर्धारणा का सबसे प्रतिनिधित्ववर्ती है। उसमें इतना बल है कि घटनाओं की अनिवार्यता भंग करके वह सब यह तो होकर रहेगा जिसे मैंने स्थिर कर लिया है। ध्रुवस्वामिनी में भी इसी स्वर निर्दिष्टवादिता के दर्शन होते हैं। प्रारम्भ में यह अपने आपको परिस्थितियों के सम्मुख समर्पित कर देती है किन्तु बाद में उसका आत्मचेतन संसार के कुछ दिन विधाता के विधान में अपने लिए सुरक्षित करने का उद्घोष करता है। यही नहीं ध्रुवस्वामिनी और स्कन्दगुप्त का परस्पर प्रेम रखते हुए भी मन्दा गश्त के लिए विद्युत् नाना ध्रुवस्वामिनी के शकराज का ऐसी स्थिति में फँस जाना कि वह कामा को न तो रोक ही सके और न [illegible] दा ही कर सके कन्यागार का आत्मदान करना और मातृिका की निमम हत्या का घटित होना भी मानो पूर्वनिर्दिष्ट ही था।

उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में प्रसाद की नियति के पूर्वनिर्दिष्टवाद की रूप रेखाएँ पूर्ण सीमा तक स्पष्ट हो जाती हैं।

## उद्देश्यवाद

जब हम नियति की सत्ता को स्वीकार कर यह मान लेते हैं कि यह विश्व किन्हीं नियमों द्वारा संचालित है तो सहज ही यह प्रश्न उठे बिना नहीं

करना कि इस विश्व के मूल में कोई उद्देश्य है अथवा नहीं। इस विषय में भौतिकवादी तथा आध्यात्मवादी दार्शनिकों में मतभेद रहा है। भौतिकवादी दार्शनिक विश्व के मूल में किसी प्रयोजन का स्वीकार नहीं करते किन्तु [illegible] प्रयोजनमूलक [illegible] के अनुसार [illegible] विकास होता है। प्राकृतिक पदार्थों के [illegible] प्रयोजन का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। [illegible] व्याख्या किसी अन्य शक्ति का [illegible] विश्व के मूल में [illegible] स्पष्ट नहीं होगी।

यन्त्रवादी यह मानकर चलता है कि प्राकृतिक पदार्थों के अन्दर कार्य-कारण सम्बन्ध के कारण अपने आप परिवर्तन होता रहता है—प्राकृतिक नियम वस्तुतः उनके घटित होने के ही नियम हैं। प्राकृतिक नियमों में यन्त्रवत् कार्य होता रहता है। इस मत के अनुसार जगत् अपने नियमों द्वारा सञ्चालित है जिसके पीछे कोई उद्देश्य नहीं है।

उक्त यन्त्रवाद निष्प्राण तथा निर्जीव पदार्थों के परिवर्तनों को समझाने में किसी अंश तक सफल हुआ है किन्तु सप्राण तथा सजीव पदार्थों के विकास को समझाने में इसे असफलता ही मिली है। जीवित पदार्थों में एक प्रकार की स्वतः स्फूर्ति तथा आत्म क्रिया मिलती है जो किसी यन्त्र में दिखाई नहीं देती। जीवित पदार्थों में सामंजस्य, अनुकूलन, आत्म प्रेरणा आदि गुण पाये जाते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर जैसी कोई प्रेरक शक्ति किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए इनको सञ्चालित कर रही है। प्राणवादी इस शक्ति को प्राणशक्ति अथवा जीवन शक्ति कहते हैं, नव्योत्क्रान्तवादी लायड मार्गन जैसे दार्शनिक इसे प्रेरक शक्ति अथवा ईश्वर का नाम देते हैं। हेगेल इसे निरपेक्ष चैतन्य सत्ता प्रदान करते हैं।

विश्लेषण के आलोक में यह मानना पड़ता है कि विश्व के विकास के मूल में कोई प्रयोजन अवश्य है। दर्शनशास्त्र में यह सिद्धांत प्रयोजनवाद के नाम से अभिहित किया जाता है।

प्रसाद के नाटकों में नियति का अध्ययन करते समय मुझे इस तथ्य की स्पष्ट अनुभूति हुई है कि प्रसाद जी चेतनवादी आध्यात्मिक दार्शनिकों के मतानुयायी हैं। वे इस विश्व के मूल में निश्चित रूप से किसी चेतन सत्ता

को स्वीकार करते हैं तथा उनकी यह भी मान्यता है कि इस विश्व के पीछे निश्चय ही कोई उद्देश्य सन्निहित है जैसा कि स्कन्दगुप्त का कथन है 'परन्तु इस संसार का कोई उद्देश्य है। इस पृथ्वी को स्वर्ग होना है, इसी पर देवताओं का निवास होगा विश्व नियन्ता का ऐसा ही उद्देश्य मुझे विदित होता है। फिर उसकी इच्छा क्यों न पूर्ण करूँ विजया, मैं कुछ नहीं हूँ, उसका अस्त्र हूँ—परमात्मा का अमोघ अस्त्र हूँ'

प्रसाद नाट्य नियति नटी सम्बन्धित उपरोक्त आठों मुखाकृतियों की एक-साथ कल्पना करने पर पाठकगण उनकी 'नियति' का समग्र बिम्ब ग्रहण कर सकते हैं।

अन्ततः प्रसाद की नियति नटी को मैं उस मधुमक्खी से उपमित करना चाहता हूँ जो प्राकृतिक नियमों में आबद्ध होकर दिन में ही कार्य करती है फूलों का ही रस चूसती है जिसने ऋतवाद, कर्मवाद, विश्व कल्याणवाद, दुःखवाद, पूर्वनिर्दिष्टवाद, उद्देश्यवाद आदि सुवासित पुष्पों का सार-तत्त्व अपने मधुकोष में इकट्ठा कर लिया है जो चेतन भी है और चंचल भी तथा यदा कदा मन-पढ़ने पर कल्याणी या मालविका का दंशन भी कर लेती है किन्तु फिर भी वह लुभावनी है क्योंकि मधु रस रूप में हमें कल्याणकारी फल देती है तथा अपने श्रमजीवी स्वभाव से पुरुषार्थ और कर्म का अनंत संदेश भी।

## उपलब्धि

अपनी मान्यताओं के रूप में प्रसाद की नियतिवादिता के सन्दर्भ में कुछ तथ्यों का स्पष्टीकरण पुनः करना चाहूँगा।

(१) प्रसाद में अभिव्यक्त नियति का निर्माणात्मक तथा आशावादी स्वरूप प्रतिपादित हुआ है। विश्व को उद्देश्यमूलक ऋत अथवा नियम द्वारा प्रचालित माननेवाले दार्शनिकों में प्रसाद का प्रमुख स्थान है जिसे वे नियमों की नियामिका शक्ति के रूप में चेतन सत्ता को बाना पहनाकर चित्रित करते हैं।

(२) प्रसाद स्वभावतः नियतिवादी रहे हैं और उन्होंने इस स्वभाव का आरोप उन ऐतिहासिक पात्रों पर भी कर दिया है जिन्हें इतिहास नियतिवादी पात्र के रूप में चित्रित नहीं करता।

(३) मैं प्रसाद की नियति की मूल आत्मा ऋतानुगत कर्मवाद को मानता हूँ जिसने अधिकांश नाटकों को पुरुषार्थ के सतरंगी रंगों में रंग दिया

है। ऐसे कई पात्र हैं जो नाटक के पूर्वार्ध में नियतिवादी हैं और बाद में चलकर कर्मवादी हो गए हैं पर इतना पर भी ऐसा पात्र मुझे नहीं मिला जो प्रारम्भ में कर्मवादी हो और अन्त में नियतिवादी बन गया हो।

(४) प्रसाद की नियति अपने गतिशील रूप में है। जड़ता तो उसमें नाम मात्र को भी नहीं। ज्यों ज्यों नाटककार के व्यक्तित्व का विकास और जीवन दर्शन का विकास होता गया है त्यों त्यों नियति भावना में भी निखार हुआ है।

(५) कोई भी जीवनद्रष्टा नाटककार जीवन से विमुख होकर नहीं चल सकता। जीवन में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का स्थान है—यह कोई आश्चर्य की बात नहीं यदि वह दोनों का चित्रण करता है। इस विषय में भास का यह श्लोक कर्णभार में विचार योग्य है —

नानस्थत दल्पिकना ना निपीन्नति पौरुष।
नाशार्थी सर्वविरिय न्य विन्नानवे रते।

(६) प्रसाद के नाटकों में यत्र तत्र दैव और पुरुषार्थ का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र युगल दृष्टिगोचर होते हैं जिससे अपने अपने स्थान पर दैववाद अथवा कर्मवाद उचित परिप्रेक्ष्य में हृदयंगम हो जाता है क्योंकि दो विपरीत वस्तुओं को देखने पर स्वतः ही दोनों की आकृतियाँ ग्राह्य बन जाती हैं।

(७) नाटकों में कार्य सिद्धि के अनेक हेतु रहे हैं। केवल नियति ही साधक अथवा बाधक नहीं। काल कर्म स्वभाव नक्षत्र परिस्थितियाँ आदि सभी का अपने अपने स्थान पर प्रभाव रहा है। यद्यपि दैववादी दैव को ही कार्य का हेतु मानते हैं किन्तु जैन दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर ने एकान्त कालवाद स्वभाववाद नियतिवाद पूर्वकृतवाद पुरुषार्थवाद आदि की अलग अलग एकान्त मान्यता को मिथ्यावाद कहते हुए इन सबके समुदाय को ही कार्य साधक माना है —

कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिसकारणेगंता।
मिच्छत्तं ते चेव उ समासओ होंति सम्मत्तं।

मेरी समझ में प्रसाद के नाटकों पर भी यह उक्ति चरितार्थ होती है।

## अंतिम स्पर्श

नियति विषयक चर्चा करते समय मैंने विश्व में व्याप्त नियम पद्धति ऋत सिद्धान्त कर्म शृंखला प्रारब्ध कर्मों की अपरिहार्यता आदि की स्थान स्थान

पर चर्चा की है। किन्तु मैं यह मानकर नहीं चलता कि मेरे द्वारा विश्व का संपूर्ण सत्य इन पृष्ठों में सिमट कर अभिव्यक्त हो गया है। मुझे लगता है कि वैज्ञानिकगण भौतिक विज्ञान की अनन्त उपलब्धियों के प्राप्त्यर्थ निरंतर प्रगतिशील तथा प्रयत्नशील बने रहेंगे, फिर भी इस अनंत ब्रह्माण्ड का सत्य वे कभी भी हस्तगत् नहीं कर सकेंगे। अनागत भविष्य की उपलब्धियाँ उन्हें अधिकाधिक उपलब्धियों के लिए निरंतर प्रेरित करती रहेंगी। इसी प्रकार विश्व के भौतिकवादी तथा आध्यात्मिक दार्शनिक संपूर्ण सत्य के विश्लेषण एवं निरूपण के हेतु विविध ज्ञान पद्धतियों का आश्रय लेते रहेंगे। सत्य के कितने आयामों तक कितने समय में और कब वे पहुँच पाएंगे यह निश्चित रूपेण नहीं कहा जा सकता। महादेवी जैसी कवयित्रियाँ और विश्व के अनेक कवि तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी देख लूं उस पार क्या है से प्रेरित होकर उस अनंत असीम सत्य के साक्षात्कार के लिए व्यग्र तथा व्याकुल बने रहेंगे। ज्यों-ज्यों वे उस सत्य के निकट पहुँचेंगे त्यों-त्यों अन्तिम सत्य उनसे दूर होता चला जाएगा।

ऐसी विकट स्थिति में मेरे जैसा विद्यार्थी अगम्य रहस्यमयी और पल पल में अपने परिवेश बदलने वाली नियति का सम्पूर्ण विश्लेषण कर सके—इसकी तो स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती। मैंने तो नियति रूपी इस विशाल अट्टालिका के निर्माणार्थ जमीन नापने के लिए कुछ आधार सूत्र मात्र रखे हैं। नियति के समस्त रहस्य का उद्घाटन निश्चय ही मेरे वश का रोग नहीं। यह विश्व नियमों द्वारा संचालित है अथवा इसका प्रवर्तन स्वेच्छया हो रहा है आज तो इसके संबंध में भी वैज्ञानिक ऊहापोह में लगे हैं। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उद्धरण करना अप्रासंगिक न होगा —

ब्रह्माण्ड में जो कुछ होता है वह शायद सिर्फ इसलिए कि जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है इसका स्वरूप ही कुछ ऐसा है कि ये सब हों। इसके सिवा या चारा नहीं है कोई विकल्प नहीं है। अब यहाँ किसी बलप्रयोग किसी रहस्यमयी आकर्षण शक्ति या किसी पूर्वनिर्धारित विशिष्ट लक्ष्य प्राप्ति के अनुगमन का सवाल ही पैदा नहीं होता। प्रकृति में हम जितने भी नियम या सिद्धान्त देखते हैं वे सब इसलिए हैं कि हम हर प्रक्रिया को एक विशिष्ट घटनानुक्रम में देखने के अभ्यस्त हो चुके हैं। यदि हम किसी पूरी प्रक्रिया का

(४) करुणालय संस्करण ३ स० २०१८ वि०
(५) कामना संस्करण ५ स० २०१८ वि०
(६) कामायनी स० २००० वि०
(७) काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध संस्करण १ स० १९९६ वि०
(८) चन्द्रगुप्त संस्करण ४ स० २००० वि०
(९) जनमेजय का नागयज्ञ संस्करण ७ स० २०१५ वि
(१०) ध्रुवस्वामिनी संस्करण १४ स० २०१८ वि०
(११) प्रायश्चित (चित्राधार) संस्करण २।
(१२) प्रेम पथिक संस्करण २।
(१३) राज्यश्री संस्करण ३।
(१४) विशाख संस्करण ७ स० २०१३ वि०
(१५) स्कन्दगुप्त संस्करण १४ स० २०१८ वि०
(१६) सज्जन (चित्राधार) संस्करण २।

(ख) अन्य ग्रन्थ

(१) आधुनिक हिन्दी नाटक डा० नगेन्द्र संस्करण १ स० १९९९ वि०
(२) कवि प्रसाद की काव्य साधना रामनाथ सुमन संस्करण ४।
(३) कामायनी दर्शन डा० कन्हैयालाल सहल एवं प्रा० विजयेन्द्र स्नातक संस्करण १९५३ ई०
(४) कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन डॉ० द्वारिकाप्रसाद संस्करण १
(५) गीता रहस्य बालगंगाधर तिलक संस्करण १९१६ ई०
(६) जयशंकर प्रसाद प्रा० नन्ददुलारे वाजपेयी संस्करण १
(७) जयशंकर प्रसाद जीवन दर्शन कला और कृतित्व सम्पादक महावीर अधिकारी संस्करण १९५५ ई
(८) जैन धर्म कैलाशचन्द्र शास्त्री संस्करण १
(९) दर्शन दिग्दर्शन राहुल सांकृत्यायन संस्करण १ १९४४ ई०
(१०) नालंदा विशाल शब्द सागर संस्करण १।
(११) नाटककार प्रसाद और चन्द्रगुप्त बैजनाथ विश्वनाथ संस्करण १।
(१२) प्रसाद साहित्यकोश डा हरदेव बाहरी संस्करण १ स २०१४ वि०
(१३) प्रसाद काव्य विवेचन डा० हरदेव बाहरी, संस्करण १ १९५६ ई०
(१४) प्रसाद का काव्य डा प्रेमशङ्कर संस्करण १ २ १२ वि०
(१५) प्रसाद की नाट्यकला प्रो० रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख संस्करण १

(१६) प्रसाद और उनका साहित्य विनोदशङ्कर व्यास, सस्करण १,१६४०ई०
(१७) प्रसाद एव पत का तुलनात्मक विवेचन प्रो० रामरजपाल द्विवेदी
सस्करण १ स० २०१४ वि०
(१८) प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
सस्करण ५, स० २०१७ वि०
(१६) प्रसाद की नाट्यकला एव स्कन्दगुप्त समीक्षा रामप्रसाद अग्रवाल सस्करण १
(२०) प्रसाद का नाट्य चिन्तन शिखरचन्द जन सस्करण १
(२१) प्रसाद एक अध्ययन प्रो० रामरतन भटनागर सस्करण १।
(२२) प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक, राजेश्वर प्रसाद अर्गल सस्करण १
(२३) प्रसाद के तीन नाटक प्रेमनारायण टडन सस्करण १
(२४) प्रसाद के नाटकीय पात्र जगदीश नारायण सस्करण १।
(२५) प्रसाद की कला गुलाबराय, सस्करण १।
(२६) प्रसाद और उनके नाटक केसरी कुमार सस्करण १।
(२७) भारतीय दर्शन बलदेव उपाध्याय सस्करण ४ १९४८ ई०
(२८) भारत सावित्री वासुदेव शरण अग्रवाल सस्करण ३
(२६) मनुष्य का भाग्य ल काम्त द नाय, ( हिन्दी अनुवाद )
( ) मानविकी पारिभाषिक कोश ( साहित्य खड ) सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
सस्करण १६६५ ई०
(३१) मीमासा दर्शन मडन मिश्र सस्करण १
(३२) मुनि श्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ सम्पादक शोभाचन्द्र भारिल्ल सस्करण १
(३३) मूल्यांकन डॉ० कन्हैयालाल सहल सस्करण १ १६६३ ई०
(३४) विवेचन सस्करण १६५३ ई०
(३५) वन्हि देवतास्त्र अनुवाद डा० सूर्यकान्त सस्करण १ १६६१ ई०
(३६) साहित्य दर्शन शचीरानी गुर्टू सस्करण १६५० ई०
(३७) हिन्दी विश्व कोश सम्पादक नगेन्द्र नाथ वसु सस्करण १६२८ ई०
(३८) हिन्दी विश्व कोश ना० प्र० सभा सस्करण १।
(३६) हिन्दी साहित्य कोश भाग १ और २ सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा सस्करण १
(४०) हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल सस्करण ८ स० २० १६वि
(४१) हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास डॉ० राजबली पाण्डेय सस्करण
२०१४ वि०
(४२) हिन्दी नाट्य म नियतिवाद डॉ० रामगोपाल शर्मा दिनेश
सस्करण १, १६६४ ई०
(४ ) ज्ञान की गरिमा बलदेव उपाध्याय सस्करण १६५६ ई०

(ग) पत्रिकाएं

(१) कल्याण उपनिषदांक १६४६ ई०
(२) कल्याण गणित देवी भागवत ग्रंक
(३) नागरी प्रचारणी पत्रिका वर्ष ४८ अङ्क १-४
(४) माध्यम फरवरी १६६६ ई०
(५) भारतीय साहित्य जुलाई १६५८ ई०
(६) साप्ताहिक भारत २५-८-१६६० ई०
(७) साप्ताहिक मसार (प्रसादाङ्क) १८ फरवरी १६४९
(८) आरोग्य, मंगल १६६६ ई०

(घ) आँग्ल ग्रन्थ तथा पत्र पत्रिकाएं

(1) B H U Magzine Oct Dec 1931
(2) Encyclopaedia Britannica Edition 1929
(3) Encyclopaedia of Region and Ethics
(4) India As Known to PANINI Vashudeo Saran Agrawal Edi I
(5) Prabudha Bharat Editor—Gambhi anal April 1962
(6) The Call of the Vedas—A C Bose Edi I
(7) The Complete Work of William Shakeshpear (London) Edi I
(8) The Golden Treasury F T Palgrave (London) Edi 1935
(9) The Philosophy of the Yoga Vasistha B L Atreya Edition 1936
(10) The Religion And Philosophy of the Veda And Upanishads A B Keith Edition I

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

डॉ० अमरपाल सिंह

कृत

# तुलसी-पूर्व राम-साहित्य

राम साहित्य के प्रमुखतम महाकवि
तुलसीदास से पूर्व रचित राम साहित्य
का विशद विवेचन प्रस्तुत करने
वाला शोध ग्रंथ

मूल्य १८ रुपये

रचना प्रकाशन
इलाहाबाद-१